आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

इतिहास और परम्परा

राजमल बोरा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मराठवाडा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद [महाराष्ट्र]

श्याम प्रकाशन, जयपुर

© राजमल बोरा

प्रकाशक श्याम प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर 302003

संस्करण प्रथम, 1987

मूल्य पचास रुपये

मुद्रक हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110032

Aacharya Ramchander Shukal By Rajmal Bora
ETIHAS AUR PRAMPARA (Criticism) Rs 50 00

अनुक्रम

इतिहास और परम्परा

(1)

आचाय रामचन्द्र शुक्ल के जन्म शताब्दी वष मे 1984 ई० मे देश भर मे सगोष्ठिया हुईं। उनके नाम से प्राय सभी स्तरीय पत्रिकाओ ने विशेषाक प्रकाशित किए। चर्चाएँ हुइ। विशेष विशेष पुस्तकें भी छपी हैं। अपनी योजना के अनुरूप मैंने भी एक पुस्तक तदथ लिखी थी 'भाव, उद्वेग और सवेदना'। उक्त पुस्तक उसी वष नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। उक्त वर्ष मे मैं सगोष्ठियो मे सम्मिलित हुआ हूँ। कुछ आलेख सगोष्ठियो मे पढे और कुछ विशेषाको के निमित्त लिखे। प्रस्तुत पुस्तक इसी का परिणाम है।

(2)

सन 1982 ई० मे डा० नामवरसिंह की पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज प्रकाशित हुई। उक्त पुस्तक मे आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की परम्परा को शुक्लजी की परम्परा से अलग कर उनके साहित्यिक काय का मूल्याकन किया गया। इस ब्याज से शुक्लजी की परम्परा का उल्लेख न चाहने पर भी हो गया। शुक्लजी की परम्परा तो चल रही है। उससे हटकर अलग परम्परा पर विचार करने से शुक्लजी की परम्परा पर फिर से विचार हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'इतिहास और परम्परा' रखा गया है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस पुस्तक म आचाय रामचन्द्र शुक्ल की 'हिन्दी साहित्य का इतिहास पुस्तक पर विचार हुआ है। दूसरा यह है कि इतिहास पर विचार करना परम्परा को स्पष्ट करने के लिए ही होता है।

(3)

इतिहास लेखन मे आचाय रामचन्द्र शुक्ल को—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के सन्दभ मे—जनक कहना चाहिए। इसका कारण यह है कि इतिहास के नाम पर मौलिक चिन्तन के रूप मे पथ का निर्माण शुक्लजी ने ही किया है। उनकी साहित्यिक अभिरुचि मे जो कवि तथा लेखक बैठ गए, वे इतिहास मे स्थान पा गए हैं। वह स्थान कितना दृढ है, इस बात को उनका विरोध करने वाले अच्छी तरह से समझते हैं। मैंने तो यह अनुभव किया है कि शुक्लजी का विरोध करने

वालो ने शुक्लजी की शक्ति को और उनकी दढता को ठीक से पहचाना है। परम्परा को नकारने मे परम्परा के बल का ज्ञान होता है। शुक्लजी के ऐतिहासिक निणयो से कई विद्वान जूझे हैं और जूझ रहे हैं। कई नाम हैं। आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी' पुस्तक मे—अपने तीन आलेखो मे—बहुत पहले शुक्लजी का विरोध किया था। 'सूरसागर' के सम्पादन का काय शुक्लजी से नही हो सका था। उसे वाजपेयी जी ने पूण किया। छाया वाद को स्थापित करने मे वाजपेयीजी का योगदान ऐतिहासिक है। आचाय शुक्ल से अपना पथ अलग बनाते हुए भी वाजपेयी जी ने शुक्लजी की परम्परा को आगे बढाया है। आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तो शुक्लजी के लेखन को प्रकाश मे लाने का महत्त्वपूण काय किया है। जो कृतिया शुक्लजी के जीवन काल मे छप नही सकी, उसे प्रकाशित करने का काम मिश्रजी ने किया है। 'सूरदास', 'रस मीमासा' तथा 'चिन्तामणि भाग 2' का सम्पादन मिश्रजी ही ने किया है। यही नही रीतिकाल के प्रधान कवियो की ग्रथावलियो को प्रकाश म लाने मे मिश्रजी आजीवन काय करते रहे हैं। हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1, तथा भाग 2, जैसे ग्रथ लिखकर मिश्रजी ने शुक्लजी की परम्परा को आगे बढाया है। इस तरह अलग-अलग क्षेत्रो मे अलग-अलग काय विद्वान करते रहे हैं। इन सब कार्यों को शुक्लजी के काय के परिप्रेक्ष्य म परखा जाना चाहिए। कबीर के सम्बन्ध मे हो या केशव के सम्बन्ध मे हो जो विद्वान अपने काय के साथ आगे आए, उनके सामने आचाय शुक्ल की परम्परा रही है और इस परम्परा को विद्वानो ने स्वीकार किया है। शुक्लजी ने अपने इतिहास मे कवियो तथा लेखको के सम्बन्ध मे जो निणय दिये व ऐतिहासिक निणय माने गये हैं। सक्षेप मे इतिहास के जनक आचाय शुक्ल ने अनकहे ही अपनी परम्परा स्थापित कर दी जिससे बाद मे विद्वानो को उस परम्परा से जूझना पडा है।

(4)

परम्परा की बात इसलिए भी चल पडी कि सन 1982 ई० मे डॉ० नामवरसिंह की पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' प्रकाशित हो गई। यद्यपि उक्त पुस्तक आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदीजी के ऐतिहासिक काय का मूल्याकन करती है तथापि उक्त काय के लिए उन्हे आचाय शुक्ल से अलगाना पडा है। शुक्लजी के पथ से आचाय द्विवेदीजीका पथ अलग है, यह सिद्ध करना पडा है। पुस्तक अपनी जगह उत्तम होने पर भी आचाय शुक्ल की ओर इस पुस्तक ने अपना ध्यान खीचा है। यदि यह दूसरी परम्परा है तो पहली परम्परा क्या है इस ओर ध्यान गया है। आचाय शुक्ल के शताब्दी वष म यह पुस्तक बहुत चर्चित रही है। अनजान म ही क्या शुक्लजी को पहचानने के प्रयत्न नही हुए ? हुए हैं। स्वय प्रस्तुत पुस्तक भी तो इसी का परिणाम है

(5)

आचाय शुक्ल मेरे प्रिय लेखक रहे हैं। इसके कई कारण हैं। उनकी कृतियो मे मैंने उनकी शक्ति को या दढता को कहिए पहचानने का प्रयत्न किया है। मुझे लगा कि ज्ञान के क्षेत्र मे जिस पवित्रता की आवश्यकता होती है, उस ओर शुक्लजी नियमित रूप मे अग्रसर दिखलाई देते रहे हैं। व्यक्ति से अधिक महत्व शुक्लजी ने विषय को दिया है। विषय को परिपूण बनाने मे वे जीवन भर साधना करते रहे हैं। उनकी साधना को पहचानना हो तो 'रस-मीमासा' पुस्तक पढना चाहिए। उक्त पुस्तक मे 'निबन्ध', 'समीक्षा', 'इतिहास' तथा 'काव्यशास्त्र' सब एक साथ कच्ची सामग्री के रूप मे मिलेंगे। शुक्लजी के निर्माण की कथा उक्त पुस्तक मे है। शुक्लजी की विद्वत्ता के स्वप्न उस पुस्तक मे हैं। कई ऐसी टिप्पणियाँ हैं, जिनका स्पष्टीकरण नही हो सकता है। उक्त पुस्तक को क्रम देने मे आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बहुत श्रम किया है। अपनी योजना के अनुसार आचाय शुक्ल पूरी पुस्तक लिख कहा पाए हैं ? इतिहास तो उनसे लिखवाया गया और वह कितनी शीघ्रता मे लिखा गया है इस तथ्य को जानने के बाद ही तो हमारा मूल्याकन ठीक हो सकता है। उनके इतिहास की सामग्री से अधिक महत्त्वपूण उनके ऐतिहासिक सिद्धान्त हैं। जो व्यक्ति सिद्धान्तो मे दृढ रहता है, उसकी परम्परा बलवान होती है। शुक्लजी के सिद्धान्तो से जूझना ही तो कठिन काय है। उनकी सामग्री को उनके सिद्धान्तो से अलग कर उनकी बौद्धिक क्षमता पर विचार करेंगे तब आप आचाय शुक्ल को ठीक ठीक पहचान पायेंगे। शुक्लजी ने अपने इतिहास-लेखन में जिस सामग्री का उपयोग किया, उस सामग्री को लेकर विवाद हुआ है और वह ठीक भी है किन्तु सिद्धान्तो को लेकर ऐसा कम हुआ है। सिद्धान्तो मे दढ रहने के कारण ही आचाय शुक्ल की परम्परा बलवती हुई है।

(6)

इस पुस्तक के लेखन की कुछ कथा लिखता हूँ। 19 माच 1984 ई० को मैं किसी काय से हैदराबाद गया था। उक्त तिथि की रात्रि मे डॉ० चन्द्रभान रावत के निवास स्थान पर पहुँचा। रात मे उनके साथ बहुत देर तक साहित्यिक चर्चा हुई। आचाय शुक्ल को लेकर बात हुई। डा० रावतजी ने कहा कि दूसरे दिन (20 माच को) विभाग मे डॉ० शिवकुमार मिश्र का व्याख्यान है। उसी समय शुक्लजी पर छोटा-सा व्याख्यान दे सकते हो। मैंने स्वीकृति दी। घर पर होता तो तैयारी करता। समय ही कहाँ ? मैंने डॉक्टर साहब से कागज माग लिए। सवेरे चार बजे उठकर अपना व्याख्यान लिख डाला। शीपक दिया—'कितने नये, कितने पुराने।' 20 माच 1984 को डा० शिवकुमार मिश्रकी अध्यक्षता मे दोपहर मे जो कायक्रम हुआ, उसमे मैंने अपना व्याख्यान पढकर सुनाया। बाद मे नागरी

प्रचारिणी पत्रिका ने शुक्ल विशेषांक के लिए लेख मांगा तो मैंने यही व्याख्यान टंकित कर भेज दिया। शुक्ल विशेषांक में उक्त व्याख्यान छप गया है। इस पुस्तक में अंतिम और एकादश अध्याय यही व्याख्यान यथावत है। इसी लेख से पुस्तक आरंभ हुई। उस समय पुस्तक का विचार ही नहीं था। बाद में अमृतसर से डा० रमेश कुंतल मेघ की ओर से आचार्य शुक्ल की संगोष्ठी के लिए निमंत्रण मिला। तदर्थ मैंने 'आधुनिक काल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' लेख लिखा। उक्त लेख इस पुस्तक का दशम अध्याय है—'आधुनिक काल गद्य पद्य उत्थान'—इस लेख में पुस्तक के अनुरूप परिवर्तन किया है। रीतिकाल से सम्बंधित अष्टम अध्याय लातूर के शाहू कालेज के लिए लिखा गया। बाद में डा० विजेन्द्र नारायण सिंह ने शुक्ल संगोष्ठी के लिए हैदराबाद बुलवाया। तदर्थ मैंने 'वियोगी हरिकृत हरितोषिणी टीका का परिचय'—शीर्षक लेख भेजा। डॉ० विजेन्द्रनारायणसिंह का पत्र मिला कि उक्त लेख ठीक नहीं है। 'भक्ति आन्दोलन का सौन्दर्य शास्त्र' विषय पर लेख लिखने का आग्रह रहा। तदर्थ फिर से नया आलेख लिखकर भेजा और वहीं शुक्ल संगोष्ठी में पढ़ा भी। उक्त आलेख इस पुस्तक का षष्ठ अध्याय है। 'वियोगी हरिकृत हरितोषिणी टीका का परिचय'—लेख मुख्य पुस्तक के क्रम में नहीं बैठता किन्तु उसका अपना अलग महत्त्व है। अतः इसे इस पुस्तक के परिशिष्ट में दे रहा हूँ। यह लेख इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि शुक्लजी व्यक्ति से विषय की ओर कैसे बढ़ते रहे हैं? हरितोषिणी टीका का परिचय लिखते समय शुक्लजी का ध्यान वियोगी हरि पर—व्यक्ति पर—था किन्तु बाद में उक्त परिचय को 'तुलसी का भक्ति मार्ग'—निबन्ध में परिणत कर दिया। ऐसा करते समय व्यक्ति से सम्बंधित अंश शुक्लजी ने काट दिए। ज्ञान को सार्वजनीन और सामान्य बनाने का प्रयत्न शुक्लजी सदैव करते रहे हैं। इस सम्बन्ध में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। अस्तु इतनी सामग्री तो शुक्लजी के ऐतिहासिक वध ने तैयार करने में सहायता पहुँचाई। बाद में मैंने विचार किया कि शुक्लजी के इतिहास पर पुनर्विचार करते हुए पुस्तक लिखनी चाहिए। योजना बनाकर सभी अध्याय एक सिरे से—आरंभ में कहिए—पुनः लिखे हैं। दोहराए गए अंशों को कम किया है और क्रम को पूर्ण करने हेतु कुछ नया लिखा है। संगोष्ठियों में जो चर्चा सुनी और कुछ नया पढ़ने में आया उन्हें जोड़ा है। इस दृष्टि से मुझे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नामवरसिंह, डा० रामविलास शर्मा तथा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की पुस्तकें पुनः पढ़नी पड़ी हैं। सभी विद्वानों का ऋण हृदय से स्वीकार करता हूँ।

(7)

इतिहास में 'चयन का सिद्धान्त'—महत्त्वपूर्ण होता है। इतिहासकार को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में अपनी अभिरुचि के अनुसार चयन करना ही पड़ता है। इस चयन

मे ही तथ्य निर्माण होता है, समीक्षा होती है और सिद्धान्त भी तदनुसार बनते है। इस 'चयन' को कहने वाले पूर्वाग्रह भी कहना चाहे तो कह सकते है। किन्तु क्या शुक्लजी का चयन आचार्यत्व की क्षमता से किया हुआ चयन नही है ? क्या उनके चयन ने उन्हे आचार्य नही बना दिया। उनके चयन ने उनको ज्ञान गरिमा का पद दिया है। शुक्लजी ने अपने लेखन म जो आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिखी है, वे विषयपरक अधिक हैं और वस्तु मूलक हैं और वे ऐसी हैं जिनका महत्त्व ज्ञान का पथ प्रशस्त करने के लिए है। ऐसा व्यक्ति इतिहास लिखता है तो उसकी परम्परा अपने आप बलवान बनती है। आचार्य शुक्ल की क्षमता का कोई व्यक्ति और सामने आए तो सन 1929 से 1986 तक का इन 57 वर्षों का इतिहास ठीक उसी ताकत से लिख सकता है। शुक्लजी की परम्परा को ठीक इतिहास के बदलते क्रम मे प्रस्तुत किया जाए तो शुक्लजी की परम्परा आगे बढ़ेगी। प्रस्तुत पुस्तक 'इतिहास और परम्परा'—शुक्लजी के पथ को पहचानने का प्रयत्न मात्र है।

(8)

पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन का विश्वास नही था किन्तु स्वय श्री मूलचद जी गुप्ता दो बार औरंगाबाद आए और पहली बार जब मैंने प्रस्ताव किया तो उन्होने स्वीकार किया। जयपुर से पत्र भी लिखा और दूसरी बार आने पर शीघ्र पाण्डुलिपि देने के लिए आग्रह किया तो कलम चल गई। ये अन्तिम पक्तिया मूलचदजी गुप्ता की उपस्थिति मे ही लिखी गयी है। इस नाते प्रकाशक का अपना जो श्रेय होता है उसे स्वीकार करता हूँ। पुस्तक पर विवाद हुआ और कुछ प्रश्न सामने आए तो विचार करूँगा। इस पुस्तक म जिनके नाम आए हैं, वे सभी महत्त्वपूर्ण ह, इतना कहता हूँ। जिज्ञासु विद्वान् पाठको का ध्यान आकर्षित करते हुए अपना निवेदन समाप्त कर रहा हूँ।

5, मनीषा नगर, केसरसिंह पुरा
औरंगाबाद 431005, (महाराष्ट्र) राजमल बोरा
8 मई 1986 ई०

1 इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल

1 1 इतिहासकार इतिहास का अग

इतिहासकार स्वय इतिहास का अग होता है। इस नाते इतिहासकार का व्यक्ति रूप मे जाने बिना इतिहास पर विचार करना अधूरा हो सकता है। आचाय रामच द्र शुक्ल को व्यक्ति रूप मे पहचानने के प्रयास अब तक कम ही हुए हैं। व्यक्ति रूप मे पहचान के अभाव के कारण, उनके द्वारा लिखे गये हि दी साहित्य के इतिहास के सम्ब ध मे भ्रान्तियाँ फैली हुई है। शुक्लजी के व्यक्ति रूप से परिचित हो जाए तो उनके द्वारा लिखित इतिहास के प्रति दृष्टिकोण म अ तर आ सकता है। इसलिए आचाय शुक्ल का व्यक्ति रूप मे परिचय यहाँ दे रहा हूँ।

1 2 इतिहास लेखन का काल 1926 1928 ई०

आचाय शुक्ल ने 'हि दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप मे 'हि दी साहित्य का विकास' लिखा। इसीका प्रकाशन 'हि दी साहित्य का इतिहास' के रूप म बाद म अलग से हुआ। इसके प्रकाशन का कच्चा चिट्ठा च द्रशेखर शुक्ल द्वारा लिखित पुस्तक 'रामच द्र शुक्ल' पुस्तक मे 'जीवन सग्राम' अध्याय म प्रकाशित है।[1] 1929 ई० मे यह इतिहास प्रथमत प्रकाशित हुआ है। 1922 ई० मे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा इसके लिखे जाने की योजना बनी थी। और इसका प्रथमत प्रकाशन 1929 मे हुआ। अत इतिहास लेखन का काल 1922 ई० से 1929 ई० तक फैला हुआ है। जनवरी 1929 मे यह छप चुका था। अत — छपाई का एक वर्ष छोड दें—इसका लेखन 1928 तक ही मानना चाहिए। ठीक से देखें तो इतिहास 1926 से 1928 ई० के बीच निरन्तर लिखा जाता रहा है। इतिहास का मूल स्वरूप इन्हीं दिनों म बना है। वसे तो इसके प्रकाशन के बाद इसम संशोधन परिवद्धन का काम निर तर—आचाय शुक्ल की मत्यु होने तक—चलता रहा है। आचार्य शुक्ल की इच्छानुसार 1929 ई० के बाद मे संशोधन परिवद्धन पूरी तरह नहीं हो सका है। या तो इतिहास लेखन का काल विस्तार

1922 ई० से आचाय शुक्ल की मत्यु तक 1941 ई० तक—व्याप्त दिखलाई देता है। किन्तु हमे मूल ढाचे के रूप मे 1929 ई० को ही सीमा मानना चाहिए ।

1 3 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आचाय शुक्ल की नियुक्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे 1919 ई० मे मालवीय जी ने की थी। उस समय से अन्त तक 1941 ई० तक वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे हिन्दी का अध्यापन करते रहे हैं। विश्वविद्यालय की आवश्य कता को शुक्लजी अनुभव करते रहे। लिखा है—

> "इधर जब से विश्वविद्यालय मे हिन्दी की उच्च शिक्षा का विधान हुआ तब से उसके साहित्य के विचार श्रृ खला-बद्ध इतिहास की आवश्यकता का अनुभव छात्र अध्यापक दोनो कर रहे थे।"[2]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे रहते हुए ही उन्होने यह काय पूण किया है। इस काय से जुडे अन्य व्यक्तियो मे बाबू श्यामसुन्दरदास का नाम प्रधान है।

1 4 बाबू श्यामसुन्दर दास

आचाय रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' के सजनकाल तथा प्रकाशन काल मे बाबू श्यामसुन्दर दास व्यक्ति रूप मे जुडे हुए है। इतनी बात सच है कि दोनो का सम्बन्ध इस पुस्तक के कारण—हिन्दी साहित्य का इतिहास के कारण—1928 ई० मे अर्थात पुस्तक के प्रकाशन काल मे—बिगड गया और अन्त तक पूववत् नही हो सका। चन्द्रशेखर शुक्ल ने लिखा है—

> "बाबू श्यामसुन्दरदास जी के हृदय मे गडा हुआ प्रस्तावना रूपी काटा जो अन्त तक न निकल सका। और वे एक ही मील पर रहते हुए भी उनकी अत्येष्टि म सम्मिलित न हुए।"[3]

कहना यह है कि इतिहास की रचना ने दोनो विद्वानो के वैयक्तिक सम्बन्धो को प्रभावित किया है। इतिहास लिखने मे आचाय शुक्ल ने अपूव श्रम किया था और उनकी इच्छा रही कि इस रचना के साथ उनका ही नाम रहना चाहिए। बाबू साहब के विरोध को सहकर उन्होने अपनी इच्छा पूरी की है। व्यक्ति रूप म आचाय शुक्ल इस इतिहास के साथ अधिक जुडे हुए हैं। आचाय शुक्ल के पुत्र श्री गोकुलचन्द्र शुक्ल ने इस सम्बन्ध मे लिखा है—

> "शुक्लजी बहुत सकोची थे, इसलिए इसके पूव भी अपना नामाकन न होने पर वे चुप रह जाया करते थे किन्तु मेरी माताजी ने घर मे उपद्रव मचा दिया। मेरे सौतेले चाचा जगदीशचन्द्र और चचेरे भाई चन्द्रशेखर इस समय हमारे साथ थे। हम तीनो ने मिलकर माताजी को शान्त किया और प्रेस मे जाकर बठ गये। बारह घण्टे लगातार

> हम तीनो बैठे रहे। मैंने वहाँ यह बात बताई कि बाबू श्यामसुन्दर दास ने नाम देने की बात मान ली थी। इसलिए पिताजी न इतनी सारी इतनी मेहनत की। शुक्लजी का नाम जब मुद्रित हो गया, तब हम लोग प्रेस से वापस आए। जगदीश ने आगे बढकर शुक्लजी को यह खबर दी। वे 'हूँ' कहकर दूसरे काम मे लग गये। किन्तु मेरी माताजी की प्रसन्नता देखते ही बनती थी।"[4]

बाबू श्यामसुन्दरदास यह सब होने पर भी शुक्लजी की विद्वत्ता, शुक्लजी के चरित्र और शील की सराहना मुक्त कठ से करते हैं। लिखा है—

> "इनके लेखो मे इनके अपने स्वतत्र विचार रहते है। वे गूढ और जटिल हैं तथा उच्च शिक्षा के बडे काम के हैं। शुक्लजी विचार-गाभीर्य के लिए प्रसिद्ध हैं।"
>
> ' शुक्लजी का चरित्र निर्दोष और स्वभाव सरल था। सरलता और सकोच की मात्रा इतनी बढी हुई थी कि स्वार्थी और कुचक्री लोग इनके पीछे पडकर अपना काम निकाल लेते थे, भले ही वह उनकी रुचि और आत्मा के विरुद्ध हो।"[5]

सच तो यह है कि 'इतिहास लेखन के सजन मे तथा प्रकाशन म आचार्य शुक्ल को द्वन्द्वात्मक स्थितियो मे गुजरना पडा है।

1 5 बीसवीं शती का तीसरा दशक

'हिन्दी साहित्य इतिहास तीसरे दशक की उपलब्धि है। इसी दशक म यह लिखा गया और प्रकाशित भी हुआ। व्यक्तिगत रूप म भी देखें तो इसी दशक म आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—को केन्द्र मे रखकर आचार्य शुक्ल की अन्य रचनाओ पर विचार करें तो इतिहास के आयाम अधिक स्पष्ट हो सकते हैं। इसी दशक मे जायसी, तुलसी तथा सूरदास—कवियो की कृतियो का सम्पादन शुक्लजी करते रहे ह और साथ-साथ इन कवियो की समीक्षाएँ भी उन्होने लिखी हैं। शुक्लजी के समीक्षात्मक लेखन को उनके इतिहास से मिलाकर देखना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य के इन श्रेष्ठ कवियो ने शुक्लजी के साहित्यिक विवेक को समृद्ध किया है।

बीसवी शती का तीसरा दशक भारतीय इतिहास मे गाधीजी का दशक भी है। राष्ट्रीय आन्दोलन भी इस समय म गतिशील रहे है। लोकमान्य तिलक का प्रभाव भी इस दशक म व्याप्त रहा है। देश मे स्वाधीनता सग्राम के प्रयत्न अलग-अलग व्यक्तियो के द्वारा अलग अलग रूप म जारी रहे हैं। इस चेतना मे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' भी लिखा जा रहा था।

1 6 शुक्लजी की अन्तर्यात्रा

शुक्लजी के इतिहास मे शुक्लजी की अन्तर्यात्रा है। व्यक्ति रूप मे शुक्लजी इतिहास लिखते समय साहित्यिक जगत की यात्रा करते रहे ह। उनकी यह यात्रा साहित्यिक विवेक के सदभ मे होती रही है। इस यात्रा का प्रयोजन साहित्यिक पुनरुत्थान है। हिन्दी साहित्य को स्वायत्तता प्रदान करने हेतु शुक्लजी ने पुनरुत्थान का यह काम किया। साहित्य के पाश्चात्य चिन्तन से परिचित रहते हुए भी शुक्लजी ने अपना विवेक जाग्रत रखा और इतिहास लेखन को पाश्चात्य विचारो से मुक्त रखकर भारतीय विचारो को ही समकालीन सदभ मे [तीसरे दशक के] व्यक्त किया। 17 अक्तूबर 1939 के एक भाषण मे आचाय शुक्ल कहते हैं—

> "आप इसमे साहित्य सम्बन्धिनी स्वतन्त्रता का ऐसा भाव जगा दें कि हम योरप मे हर एक उठी हुई बात की ओर लपकना छोड दें, समझ-बूझकर उन्ही बातो को ग्रहण करें जिनका कुछ स्थायी मूल्य हो, जो हमारी परिस्थिति के अनुकूल हो। योरप की दशा तो आजकल यह हो रही है कि वहा जीवन के हर एक विधान से उसे धारण करने वाला शाश्वत तत्त्व निकालता जा रहा है। क्या राजनीति क्या समाज, क्या साहित्य सब डगमगा रहे है। रूस के बोल्शेविकों की बात सुनिए तो व बडी उपेक्षा से अब तक के सारे साहित्य को ऊँचे वग के लोगो का साहित्य बताकर बढ़ैयो, लोहारो और मजदूरो के साहित्य का आसरा देखने को कहगे। जमनी की ओर दृष्टि दौडाइए तो वहा केवल नात्सी सिद्धान्तो का समथक साहित्य ही सिर उठा सकता है। फ्रायड साहब अभी मरे है जिनकी समझ मे स्वप्न भी हमारी अतृप्त वासनाओ के तृप्तिविधान के छायामय रूप हैं और काव्यादि कलाए भी हमारी अतृप्त कामवासनाओ की तृप्ति के विधान हैं। अब हमारे समझने की बात यह है कि क्या हमे इन सब बातो को ज्यो का-त्यो लेते हुए अपने साहित्य का निर्माण करते चलना चाहिए अथवा ससार के भिन्न भिन्न देशो की भिन्न भिन्न प्रवत्तियो की समीक्षा करते हुए अपनी बाह्य और आभ्यन्तर परिस्थिति के अनुसार उसके लिए स्वतन्त्र माग निकालते रहना चाहिए।"[6]

स्पष्ट है कि शुक्लजी हिन्दी साहित्य को पश्चिमी प्रभावो से मुक्त रखना चाहते थे। शुक्लजी की साहित्य जगत की यह अन्तर्यात्रा भारतीय मानस की पहचान कराने मे समथ है। साहित्य के इतिहास के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को स्वतन्त्र रूप देने का प्रयत्न किया है। हिन्दी साहित्य की यह पहचान आज भी हमे विचारोत्तेजक और बलवान प्रतीत होती है।

आचार्य शुक्ल का व्यक्ति रूप इतिहास मे सर्वाधिक मुखरित है। इसका एक कारण यह भी है कि आचार्य शुक्ल इतिहास को समीक्षात्मक रूप देते गए हैं। इन समीक्षाओ मे निर्णयात्मक पक्तिया भी हैं। इतिहासकार के निर्णय से सभी सहमत नही हो सकते। शुक्लजी के ऐसे निर्णयो को लेकर बाद मे प्रतिक्रियाएँ बहुत हुई है। ये प्रतिक्रियाएँ शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि को लेकर अधिक हुई हैं। कहना यह है कि अपने इतिहास लेखन मे आचार्य शुक्ल अपनी साहित्यिक मान्यताओ और साहित्यिक अभिरुचियो को आधार बनाकर चलते रहे हैं। विशेष बात यह है कि शुक्लजी अपनी साहित्यिक मान्यताओ को बौद्धिक बाने मे प्रस्तुत करते हैं। वे तर्क देते हुए लिखते हैं। इसलिए सहज ही मे तर्क के द्वारा खण्डन करना सामान्य पाठक के लिए कठिन हो जाता है। आचार्य शुक्ल का लेखन दृढ है और वे बडे आत्म विश्वास के साथ लिखते हैं। शुक्लजी नैतिकता के पक्षपाती है। इस प्रकार के नैतिक निर्णय उन्होने अपने इतिहास मे दिए है। ई० एच० कार ने लिखा है—

> "नैतिकता के साथ इतिहास का सबध कही ज्यादा जटिल है और अतीत मे इससे सम्बन्धित परिचर्चाओ मे कई तरह की सदिग्धताए रही हैं। आज इस बात पर तर्क करना एकदम गैर जरूरी हो गया है कि इतिहासकार को अपने इतिहास मे आने वाले चरित्रो के व्यक्तिगत जीवन पर नैतिक फैसले नही देने चाहिए। इतिहासकार और नैतिकतावादी के वैचारिक आधार एक नही होते।"[7]

शुक्लजी के नैतिक निर्णय इतिहास मे विवाद के विषय बने हुए हैं। और सच्चाई यह भी है कि इन नैतिक निर्णयो के कारण ही उनका इतिहास मूल्यवान भी बना है। शुक्लजी के निर्णय, शुक्लजी के इतिहास की सीमाएँ भी है।

1 7 राष्ट्रीय अस्मिता से युक्त इतिहास लेखन

आचार्य शुक्ल का इतिहास लेखन राष्ट्रीय अस्मिता से युक्त है। ब्रिटिश सरकार की नौकरी करने के पक्ष मे वे कभी नही रहे। शुक्लजी के पिताजी प० चन्द्रबली शुक्ल कानूनगो थे। मीरजापुर जिले मे कलेक्टर विढम साहब थे। 1903 ई० के आसपास की बात है। शुक्लजी उस समय लगभग 19 वर्ष के थे। उस समय जिले का एक नक्शा विढम साहब ठीक करना चाहते थे। प० चन्द्रबली शुक्ल को उन्होने नक्शा ठीक करने के लिए दिया था। उक्त नक्शा आचार्य शुक्ल ने ठीक निपात कर दिया। विढम साहब बहुत खुश हुए। तदनुसार उन्होन शुक्लजी को नायब तहसीलदार की नियुक्ति की स्वीकृति दिलाई। पिताजी ने यह बात कही किन्तु शुक्लजी सरकारी नौकरी करना ही नही चाहते थे। बाद मे उन्होने एक लेख What has India to do [भारत को क्या करना है] अग्रेजी

मे लिखा और यह 'दि हिन्दुस्तान रिव्यू' मे फरवरी 1907 ई० के अक मे छपा। यह लेख क्रान्तिकारी प्रमाणित हुआ। इस लेख को पढने के बाद विढम साहब ने शुक्लजी के पिताजी प० चद्रबली शुक्ल को बुलाकर कहा "आपका लडका क्रांतिकारी हो रहा है। उसे ठीक से सभालिए नही तो हाथ से निकल जाएगा।"[8] तात्पर्य यह कि राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के प्रयत्न शुक्लजी आरम्भ से ही कर रहे थे। अग्रेजी से सुपरिचित थे किन्तु अपनी भाषा को उत्तम मानते थे।

आचार्य शुक्ल का उक्त लेख What has India to do का हिन्दी अनुवाद [अपूर्वानन्द ने अनुवाद किया] आलोचना के 74 वें अक मे, जुलाई सितम्बर 1985 के अक मे छप गया है। इस लेख के कुछ अश नीचे उद्धृत कर रहा हूँ—

"दरअसल हमे समाज-सुधारक, राजनीतिक, आन्दोलनकर्त्ता, कवि और शिक्षाविद्—इन सबकी एक ही साथ, एक ही समय मे, जरूरत है। लेकिन इनसे भी ज्यादा जरूरत हम ऐसे लोगो की है, जिनका काम यह देखना हो कि किसी विशेष कार्य क्षेत्र मे किसी विशिष्ट अवसर की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए पर्याप्त लोग है या नही।"[9]

× × ×

"भारतीय जनमानस को एक सामजस्यपूर्ण धरातल पर लाने मे देशी भाषा के बढते हुए साहित्य की जो भूमिका है उसकी शायद हम उपेक्षा नही कर सकते। यहाँ मैं ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित किसी विस्तार मे जाने की कोई इच्छा नही रखता। इतना ही कहना काफी है कि इन क्षेत्रो मे से किसी एक पर हम कितना ध्यान दें, यह तय करने मे समय की आवश्यकताएँ ही हमारे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए।"[10]

× × ×

"जहाँ तक हम देख पाए हैं, साम्राज्यवाद ही भारत मे ब्रिटिश राष्ट्र की भाँति की प्रेरक शक्ति रहा है। उन्होने (ब्रिटिश—अनु०) यह हाल कर रखा है कि भारतीय प्रशासन म उनकी अपनी ब्रिटिश परिकल्पना का एक रेखा भी नही दिखाई देता। इसमे शक नही कि वे रूप को सुरक्षित रखते है, लेकिन वे उस सार-तत्त्व को खत्म कर देते हैं"[11]

ध्यान देने की बात है कि ये विचार शुक्लजी ने 1907 ई० म प्रकाशित कर दिये थे और वह भी अग्रेजी भाषा मे। कलेक्टर विढम साहब ने इन विचारो को पढा था और शुक्लजी के पिताजी को यह कहकर सजग कर दिया था कि अपने क्रान्तिकारी लडके को सभाल कर रखें।

आचार्य शुक्ल चाहते तो नायब तहसीलदार बन जाते और बाद मे ---ी

पदोन्नति भी होती। अलवर की नौकरी करने आचार्य शुक्ल 1924 ई० में गए थे। उस समय मालवीयजी ने शुक्लजी के स्वभाव को जानने के नाते कहा था कि न अलवर आपके अनुकूल पटेगा न आप अलवर के। हुआ यही कि राजसी वातावरण में शुक्लजी का मन नहीं लगा। सर्वत्र दासता ही दासता देखकर घबरा गये। लौटकर काशी आए तो फिर बुलाने पर गये ही नहीं। पत्नी ने कुछ आग्रह किया तो निम्नलिखित पंक्तियां सुनाकर शान्त कर दिया[12]

चीथड़े लपेटे चने चाबेंगे, चौखट चढ़,
चाकरी करेंगे नहीं चौपट चमार की।

आचार्य शुक्ल स्वाभिमानी थे। यही कारण है कि उनका इतिहास सशक्त आत्माभिव्यक्ति का रूप ले सका है।

18 असहयोग आन्दोलन और आचार्य शुक्ल

आचार्य शुक्ल तीसरे दशक में जब अपना इतिहास लिख रहे थे, उस समय महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव देश भर में व्याप्त था। प्रेमचंदजी ने तो असहयोग आन्दोलन के कारण अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। इस तुलना में आचार्य शुक्ल तो आरम्भ से ही सरकारी नौकरी के पक्ष में नहीं रहे। गांधीजी की अपेक्षा वे लोकमान्य तिलक से अधिक प्रभावित रहे हैं। 1920 ई० में इस आन्दोलन की प्रतिक्रिया में उन्होंने एक लेख अंग्रेजी में 'नान को आपरेशन एण्ड दी नान मर्केंटाइल क्लासेज' शीर्षक लेख लिखा था। उक्त लेख बांकीपुर (पटना) के एक्सप्रेस अखबार के कई अंकों में 1921 ई० छपता रहा है।[13] इस लेख का अनुवाद गोरखपुर से प्रकाशित दस्तावेज, शुक्ल अंक, अक्तूबर 1983 जनवरी 1984, में छपा है। उक्त लेख के आधार पर वीर भारत तलवार ने आचार्य शुक्ल के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण किया है। अपने विश्लेषण में वीर भारत तलवार लिखते हैं—

> 'उनकी [आचार्य शुक्ल की] साहित्यिक स्थापनाओं का जन्म राष्ट्रीय आन्दोलन की उथल पुथल के बीच हुआ, ये स्थापनाएँ राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति उनके रवैये, समझदारी और मान्यताओं से सम्बन्धित थी। शुक्लजी ने उन प्रश्नों को अपने लेखन के केन्द्र में रखा जो राष्ट्रीय आन्दोलन ने पेश किये थे। लिपि का प्रश्न, हिन्दी-उर्दू भाषा-समस्या, हिन्दी में संस्कृत फारसी शब्दावली, भारतीय परम्परा और पश्चिमी प्रभाव की टक्कर सुधार और पुनरुत्थान, आधुनिकता और भारत की सांस्कृतिक पहचान—ये प्रश्न राष्ट्रीय आन्दोलन ने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में पेश किये थे। शुक्लजी जिस समय साहित्य के क्षेत्र में उतरे, उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन में

> राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण बना हुआ था। परम्परा या आधुनिकता? हमारी संस्कृति, साहित्य और राष्ट्र का विकास किस दिशा में होना चाहिए? हम किसके आधार पर, ज्यादा शक्तिशाली बनेंगे? राष्ट्रीय आन्दोलन से उठे इन प्रश्नों ने शुक्लजी के लेखन का परिप्रेक्ष्य तैयार किया।"[14]

श्री वीर भारत तलवार ने यह ठीक लिखा कि राष्ट्रीय आन्दोलन के मामले में शुक्लजी भावनाशील नहीं थे। आचार्य शुक्ल ने बौद्धिक रूप में तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का विश्लेषण किया और अपने विचारों के अनुसार दृढ़ता के साथ अपना इतिहास-लेखन का कार्य जारी रखा है

9 इतिहास अपूर्ण रह गया है।

सन् *1929 ई०* में प्रकाशित इतिहास—को आचार्य शुक्ल लगातार संशोधित करते रहे हैं। इस दृष्टि से आधुनिक काल पर लिखी गई टिप्पणियाँ, कुछ संशोधन तथा परिवर्द्धन बाद में प्रकाशित संस्करणों में हुआ भी है। इस तथ्य का उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि आचार्य शुक्ल की इच्छानुरूप नई सामग्री का उपयोग पूरी तरह से नहीं हो सका है। आचार्य शुक्ल के पुत्र गोकुलचन्द्र शुक्ल ने 'इतिहास की नियति—शुक्लजी'—शीर्षक लेख में इस ओर संकेत किया है। उक्त लेख हिन्दुस्तानी, शुक्ल अंक जुलाई दिसम्बर 1983 ई० में छप चुका है। आचार्य शुक्ल हिन्दी में ऐसे अकेले लेखक मिलते हैं जो अपने लेखन को बार-बार परिष्कृत करते रहे हैं। निबन्ध तथा अन्य प्रकार के लेखन को भी जब उन्होंने संशोधित किया है तो इतिहास को वे वैसे ही नहीं रख सकते थे। यह उनके स्वभाव के विपरीत बात लगती है। उनकी संशोधित सामग्री दो बार गायब हो गई। दो बार गायब होने पर भी हिम्मत नहीं हारे। तीसरी बार ठीक किया। तीसरी बार लिखा हुआ अंश भी 150 पृष्ठों से कुछ अधिक ही था। मृत्यु के अवसर पर घरवालों की आँख बचा कर कुछ जानकारों ने वह सामग्री गायब कर दी। अन्त तक सामग्री ठीक से इतिहास में जुड़ ही नहीं पाई।[15] यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि इतिहास लेखन में संशोधन-परिवर्द्धन का कार्य निरन्तर जारी रहता है। इतिहास-बोध में काल बदलने से परिवर्तन होता है और नये तथ्य मिल जाए तो उनको क्रम में स्थान देने के लिए पूर्व-मूल्यांकन को बदलना आवश्यक हो जाता है। अपनी सामग्री को नवीनतम रूप देते रहने का काम बौद्धिक रूप में सजग विद्वान ही कर सकता है। हमारे पास आज जो इतिहास उपलब्ध है, वह सन् 1941 ई० के अनुसार नहीं है। 1929 ई० के बाद कम से कम तीन बार संशोधित करने के प्रमाण हमारे पास उपलब्ध हैं जिसका उपयोग इतिहास में नहीं हो सका है। एक दशक के बीच ही लेखक ने इतिहास बदलकर लिखना आवश्यक समझा तो आज

की स्थिति मे आज की नई सामग्री के परिप्रेक्ष्य मे शुक्लजी कितना परिवतन करना चाहते, यह विचारने की बात है। शुक्लजी का इतिहास आज [1986—1929=57] 57 वर्षो के बाद भी हमे आकृष्ट करता है, तो उसका एक बडा कारण यह भी है कि उसमे अपने युग की आवश्यकताए सोद्देश्य मौलिक चिन्तन से युक्त है। शुक्लजी का इतिहास चिन्तन गतिशील होते हुए अपने मे दृढ भी है। उनकी गतिशीलता को पहचानने के प्रयास होने चाहिए। हम शुक्लजी को बौद्धिक रूप मे जितना जानते हैं, उतना उनके निजी मानवीय व्यक्तित्व के आलोक मे नही जानते। व्यक्ति रूप मे शुक्ल को पहचान कर उनके इतिहास को पढा जाएगा तो हमे युग को समझने मे नई दृष्टि मिल सकती है। उनका इतिहास उनकी दृष्टि मे अपूर्ण होते हुए भी हमारे लिए वह आलोक स्तम्भ है।

□□□

2 इतिहास के तथ्य

2 1 साहित्य के इतिहास के तथ्य

साहित्य के इतिहास लेखन के लिए तथ्य क्या हो सकते हैं ? निश्चित ही हमारा ध्यान कवियों और उनकी रचनाओं की ओर जाएगा। ठीक-ठीक कहें तो साहित्यकार और उनकी कृतियों का उपयोग तथ्यों के रूप में साहित्य के इतिहास-लेखन में होगा। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल के पूर्व तथ्यों के संकलन का काम हुआ है। तथ्यों के सम्बन्ध में ई० एच० कार लिखते हैं—

> "इतिहास के तथ्य हमें कभी शुद्ध रूप में नहीं मिलते क्योंकि शुद्ध रूप में वे न रहते हैं और न रह सकते हैं, वे हमेशा लेखक के मस्तिष्क में रंगकर आते हैं। बाद में जब इतिहास का कोई कार्य शुरू करते हैं तो हमारा ध्यान सबसे पहले उसमें प्राप्त तथ्यों पर केन्द्रित नहीं होना चाहिए बल्कि उस इतिहासकार पर होना चाहिए जिसने उसे लिखा है।[15]

इस नाते 'साहित्य के इतिहास' के तथ्यों पर विचार करते समय हमें तथ्यों के चयनकर्त्ताओं पर विचार करना चाहिए। प्रस्तुत में हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—के तथ्यों पर विचार कर रहे हैं। प्रश्न है—क्या आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास-लेखन के लिए तथ्य संकलन का काम किया था ? सर्वेक्षण के रूप में तथ्यों को एकत्रित करने का काम लगता है, आचार्य शुक्ल ने किया ही नहीं। तथ्यानुसन्धान के लिए आचार्य शुक्ल के पास समय ही कहाँ था ?

2 2 सर्वेक्षण तथ्य संकलन

आचार्य शुक्ल ने इतिहास लेखन के लिए जिस सामग्री का उपयोग किया है, उसका उल्लेख प्रथम संस्करण के वक्तव्य में हुआ है। उक्त वक्तव्य के आधार पर तथ्य-संकलन के लिए या सर्वेक्षण के रूप में जिस सामग्री का उपयोग हुआ है, वह निम्नलिखित है—

□ शिवसिंह सरोज, ठाकुर शिवसिंह सेंगर 1883 ई०

- 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नादर्न हिन्दुस्तान', डाक्टर (सर) ग्रियर्सन, 1889 ई०
- 1900 ई० से 1911 ई० तक आठ खोज रिपोर्टें काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने तैयार करवाई थी। इन सभी का उपयोग आवश्यकतानुसार किया गया है।
- मिश्रबन्धु विनोद, गणेश बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र और श्याम बिहारी मिश्र, सन् 1913 ई०।
- हिन्दी कोविद रत्नमाला, रायसाहब बाबू श्यामसुन्दर दास
- कविता कौमुदी, प० रामनरेश त्रिपाठी
- व्रजमाधुरीसार, श्री वियोगी हरिजी[16]

यह सारी सामग्री काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध थी। शुक्लजी को सामग्री सकलन के लिए कहीं जाना नहीं पडा है। हस्तामलक और सहज उपलब्ध सामग्री का ही उपयोग शुक्लजी के इतिहास मे हुआ है। तथ्यानुसधान का काम मिश्रबन्धुओ ने अधिक किया है। खोज रिपोर्टों का उपयोग मिश्रबन्धुओ ने जितना किया, उतना शुक्लजी ने किया ही नहीं। आचार्य शुक्ल को सन्देह होना या किसी तथ्य को देखना आवश्यक प्रतीत होता, तब वे खोज रिपोर्ट पलट कर देखते। खोज रिपोर्ट का पूरा-पूरा उपयोग इतिहास-लेखन मे होना चाहिए, इस दृष्टि से शुक्लजी ने खोज रिपोर्टें देखी ही नहीं है। इस नाते मिश्रबन्धुओ के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की तुलना करना उचित हो सकता है।

2 3 मिश्र बन्धु और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

मिश्रबन्धुओ ने खोज रिपोर्टों का उपयोग कर 'मिश्रबन्धु विनोद' लिखा है। इसमे जितने तथ्यो का उपयोग हुआ है, उन सबका उपयोग शुक्लजी ने नहीं किया है। आचार्य शुक्ल ने विनोद को 'प्रकाण्ड कविवृत्त-सग्रह' कहा है। प्रकाण्ड कहने का कारण यह है कि कवियो की सख्या अधिक है। श्रीमती रमादेवी शुक्ल ने अपने शोध प्रबन्ध 'मिश्रबधु और उनका साहित्य'—मे विनोद की सामग्री पर विचार किया है। 4552 कवियो तथा रचनाकारो [ग्रन्थकर्त्ताओ कह लीजिए] का उल्लेख विनोद मे हुआ है। प्रबन्ध लेखिका ने इन सब नामो की तालिका अध्याय चार मे अन्तर्गत दी है।[17] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के अन्तर्गत 'ग्रन्थकारो की अनुक्रमणिका पीछे दी गई है। इस अनुक्रमणिका मे आये ग्रन्थकारो के नामो की सख्या कुल 830 होती है। 830 नामो मे 86 नाम ऐसे हैं जिनके आगे 'देखिए'—लिखा है अर्थात 86 नाम दोहराए गए हैं। इनको घटा दें तो कुल नाम 744 रह जाते हैं। जहाँ मिश्रबन्धुओ के नामो की तालिका 4552 और वहाँ शुक्लजी द्वारा उपयोग मे लाए गए 744 नाम। इन 744 नामो मे 362 नाम ऐसे हैं

जिनका उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास मे समान रूप से मिलते हैं।[18] इसका तात्पर्य यह भी हुआ कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास मे लगभग आधे नामो से कुछ अधिक [382 नाम] ऐसे हैं जिनका उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद मे नही है। इसका तात्पर्य यह भी हुआ कि [4552—362=4190] 4190 नामो का उपयोग शुक्लजी ने किया ही नही है। अर्थात् लगभग 14 गुना से कुछ अधिक सामग्री का उपयोग शुक्लजी ने किया ही नही है। यहाँ मैं मिश्रबन्धुओ के द्वारा किए गए श्रम के सम्बन्ध मे यह कहना चाहूँगा कि तथ्यो के सकलन, सर्वेक्षण, तथा उनके वर्गीकरण आदि के सबध मे जिस निष्ठा की आवश्यकता होती है, वह पूरी निष्ठा मिश्रबन्धुओ मे मिलती है। लगता है, उपलब्ध तथ्यो का अधिकतम उपयोग करने का प्रयत्न मिश्रबन्धुओ ने किया है। वस्तुत मिश्रबन्धुओ ने उपलब्ध तथ्यो को काल क्रम मे वृत्त देते हुए [आचार्य शुक्ल कवि-वृत्त कहते ही हैं] प्रस्तुत किया है। मिश्रबन्धुओ ने ग्रन्थकारों, रचयिताओ या कवियो की सख्याएँ क्रमश दी हैं। इस तरह की क्रम सख्याएँ शुक्लजी के इतिहास मे नही दी गई हैं। शुक्लजी के इतिहास मे क्रमसख्याए कही मिलती हैं, कही नही मिलती। वीरगाथा मे 7 सख्याएँ हैं, फुटकल मे 8 और 9 हैं। ये 8 और 9 वीरगाथा के आगे की सख्याएँ हैं। निर्गुण धारा मे सख्याएँ तो नही दी गई किन्तु कबीर से अक्षर अनन्य तक 8 नाम हैं। प्रेममार्गी (सूफी) शाखा मे कुतबन से नूर मुहम्मद तक 6 नाम हैं। रामभक्ति शाखा मे प्रधान नाम 5 ही हैं। बाद मे अन्य नामो का उल्लेख किया गया है। स्वतन्त्र रूप मे उनपर लिखा हुआ नही है। कृष्णभक्ति शाखा मे सूरदास से ध्रुवदास तक 17 नाम मिलते हैं। भक्तिकाल के फुटकल कवियो म 22 नाम हैं। रीतिग्रन्थकार कवियो के नाम 57 हैं और रीतिकाल के अन्य कवियो के नाम 46 हैं। इन सख्याओ पर ध्यान दें तो रीतिकाल तक के नामो की सख्या 170 के आस पास पहुँचती हैं। आधुनिक काल मे शुक्लजी ने सख्याए दी ही नही है। कहना यह है कि अनुक्रमणिका मे 744 नाम मिलते हैं, उन सब नामो पर भी शुक्लजी ने विस्तार से नही लिखा है। जिनका उल्लेख मात्र हुआ है, वे नाम भी 744 सख्या मे सम्मिलित हो गए हैं। आचार्य शुक्ल ने जितने नामो का उल्लेख किया, वे भी उन्हे आवश्यकता से अधिक लग रहे थे। सक्षेप मे इतिहास मे यदि तथ्यानुसधान का काम महत्त्वपूर्ण मानते हैं, तो उस ओर आचार्य शुक्ल ने ध्यान नही दिया है, यही कहना पडेगा। नय तथ्यो के उपयोग की बात छोड दें, जो उपलब्ध थे, उनका भी पूरा उपयोग करना उनके लिए कठिन हो गया था।

2 4 तथ्यो की प्रामाणिकता

आचार्य शुक्ल के इतिहास म तथ्यो का उपयोग जिस रूप मे हुआ है, उसकी

तीव्र आलोचनाएँ हुई हैं। बात यह है कि तथ्य सम्बन्धी भूलें बहुत हो गई हैं। ऐसी बात नही कि स्वय आचार्य शुक्ल इन भूलो से परिचित नही थे। जानते हुए भी उन्होंने ऐसे तथ्यो का उपयोग कर लिया है। तथ्यो की प्रामाणिकता की जाच मे शुक्लजी गए ही नही। यदि वे जाच करने बैठते तो सभवत इतिहास पूरा लिखा ही नही जाता। तथ्यो की प्रामाणिकता के सबध म वे शिवसिंह सेंगर तथा मिश्र बन्धु विनोद पर अधिक निर्भर रहे हैं। लिखा भी है—

> "पहले कहा जा चुका है कि प्राकृत की रूढियों से बहुत कुछ मुक्त भाषा के जो पुराने काव्य—जैसे, बीसलदेवरासो, पृथ्वीराजरासो—आजकल मिलते हैं वे सदिग्ध हैं। इसी सदिग्ध सामग्री को लेकर थाडा बहुत विचार हो सकता है, उसी पर हमे सन्तोष करना पडता है।[19]

यह तो वीर गाथा काल की सामग्री के सम्बन्ध मे लिखा। रीतिकालीन सामग्री के सबध म लिखते हैं—

> "कवियो के [रीतिकालीन] परिचयात्मक विवरण मैंने प्राय मिश्रबधु विनोद से ही लिए हैं। कहीं-कहीं कुछ कवियो के विवरणो मे परिवर्द्धन और परिष्कार भी किया है, जैसे ठाकुर, दीनदयालगिरि, राम सहाय और रसिक गोविंद के विवरणो मे। यदि कुछ नाम छूट गए या किसी कवि की किसी मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नही हुआ तो इससे मेरी कोई बडी उद्देश्य हानि नही हुई। इस काल के भीतर मैंने जितने कवि लिए हैं या जितने ग्रथो के नाम दिये हैं, उतने ही जरूरत से ज्यादा मालूम हो रहे हैं।"[20]

मिश्रबन्धुओ के साथ-साथ शिवसिंह सेंगर के शिवसिंह सरोज की सामग्री का भी उपयोग आवश्यकतानुसार किया है। परिचयात्मक विवरण ही नही अपितु तिथियो के निर्णय को बहुत से स्थानो पर यथावत् स्वीकार कर लिया है। इतिहास में तथ्यो को पवित्र माना जाता है। तथ्यो के बल पर ही इतिहास ठीक ठीक लिखा जाता है। इस ओर अधिक ध्यान न देने के कारण शुक्लजी का इतिहास अधिक विवादास्पद हुआ भी है। तथ्यो का प्रामाणिक मान लें तो फिर इतिहास सर्वोत्तम हो जाता है।

25 तथ्यों की उपेक्षा क्यों हुई ?

आचार्य शुक्ल के इतिहास मे तथ्यो की उपेक्षाएँ बहुत हुई हैं। आगे इस पर विचार हो ही रहा है किन्तु यहाँ पर यह कहना है कि इस उपेक्षा के कारण क्या हो सकते हैं? स्पष्ट लगता है कि समय की सीमा के भीतर यह काम जल्दी म पूरा करना था। इस बात का उल्लेख वक्तव्य म शुक्लजी ने किया ही है।[21] दूसरा कारण यह है कि तथ्यो के अन्वेषण म शुक्लजी प्रवृत्त ही नही हुए। जो तथ्य उन्हे

सुलभ थे, उन्हीं को आवश्यकता से अधिक मान लिया। इस बात को रीतिकाल के प्रसग मे उन्होंने स्वीकार किया हो है।[22] शुक्लजी को तथ्यों के प्रति विशेष मोह नही था। इतिहास म तथ्यमूलक तालिकाएँ बहुत ही कम स्थाना पर दी हैं। अपभ्र श काल मे 84 सिद्धो के नाम एक साथ दिये गए हैं। तुरन्त टिप्पणी लिख दी—

> "इसी सूची के नाम पूर्वापर कालक्रम से नही है। इनम से कई एक समसामयिक थे।

ऐसे ही अन्य स्थानो पर किया है। भक्तिकाल की फुटकल रचनाओ मे अन्त मे आख्यान काव्यो की तालिका इसी तरह दी है। तालिका मे तथ्यपरक जानकारी पूरी नही है। तालिका मे किसी का नाम मात्र भी दे देना बाद मे महत्वपूण मान लिया गया है। तथ्य और आँकडो का अपना महत्त्व होता है। इतिहास इनके अभाव मे लिखा ही नही जा सकता। तथ्यानुसधान तथा तथ्याख्यान मे आचार्य शुक्ल का ध्यान तथ्याख्यान में अधिक रहा है। जिन तथ्यो का चयन शुक्लजी ने किया उनका तथ्याख्यान महत्त्वपूण माना गया है। इस नाते शुक्लजी प्रसिद्ध भी हैं। शुक्लजी के इतिहास की कमजोरी तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच की कमजोरी है। इतिहास जिन भित्तियो पर खडा होता है, वह भित्ति ही मूल म कमजोर हो या आधार रहित हो तो—इतिहास की नीव ही कच्ची रह जाती है। इस दोष को देखते हुए भी तथ्याख्यान इतना बलवान हो गया है कि सहज ही मे इस दोष की ओर ध्यान नही जाता। तथ्यो की जाच करनेवाला को ही ये दोष ज्ञात हो सकते हैं। जो तथ्य पहले से ठीक ज्ञात थे, वे उसी रूप मे प्रचलित रहे हैं। ठाकुर शिवसिंह सेंगर और मिश्रबन्धु विनोद के तथ्य शुक्लजी के इतिहास मे प्रामाणिक रूप म स्वीकृत रूप मे विद्यमान हैं। इस मामले मे हम शुक्लजी को दोष भी क्यो दें?

2 6 तथ्य चयन और बौद्धिक ईमानदारी

आचाय शुक्ल के इतिहास मे तथ्यो की नीव कच्ची होने पर भी तथ्याख्यान मूल्यवान हो गया है। आचाम शुक्ल की साहित्यिक अभिरुचि विकसित और प्रौढ थी। जो तथ्य उन्हें महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए उन तथ्यो पर उन्होने विस्तार से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विचार किया है। इस तरह से विचार करने मे उन्होने अपने ज्ञान का उपयोग ईमानदारी से किया है। शुक्लजी बौद्धिकता के पक्षपाती थे। भावना मे बहकर लिखना उन्हे ठीक नही लगता था। दृष्टिकोण वस्तुमूलक रहा है। वे विषय-वस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित करना उचित मानते थे।

तथ्य चयन इतिहासकार को करना ही पडता है। इस चयन मे वह चाहकर भी तटस्थ नही रह सकता। वह चुनाव करने के लिए विवश है। इतिहासकार जिस युग मे जीता है, उस युग की आवश्यकता के अनुसार वह अतीत मे तथ्यों

चयन करता है। शुक्लजी के सामने तथ्यों का अम्बार लगा था किंतु उन्होंने अपने दृष्टिकोण से ही तथ्यों का चयन किया है। कहा गया है कि 'तथ्य तभी बोलते हैं जब इतिहासकार उन्हें बुलाता (बोलने लगता) है।[23] तथ्य चयन में तथ्यों के सम्बंध में विवेक से काम लेना पड़ता है, उनके सम्बंध में निर्णय देना पड़ता है और फिर उनकी व्याख्या भी करनी पड़ती है। यह एक ऐसा लम्बा प्रवाह है, जिसमें इतिहासकार को साथ साथ रहना पड़ता है। वह जिस किसी युग से तथ्य का चयन करे, उसे उस तथ्य को काल-क्रम में रखते हुए अपने समकालीन चिंतन के अनुरूप बनाना पड़ता है। और फिर इस तथ्य चयन में वे लोग भी जिम्मेदार होते हैं जिन्होंने पहले ही तथ्यों का चयन कर लिया है। अर्थात शिवसिंह सेंगर या मिश्रबंधु विनोद या और विद्वान भी तथ्य चयन करते ही रहे हैं। आचार्य शुक्ल के पास तथ्य उनसे ही या उनके माध्यम से ही पहुँचे हैं। आचार्य शुक्ल ने नये तथ्यों का चयन न कर चयन किए हुए तथ्यों में से चयन किया है। बात इतनी ही है कि तथ्यों की पहचान उनकी अपनी है। इतिहास एक प्रकार से सहयोगी ज्ञान है जो परम्परा से चला आता है। परम्परा की पहचान बदलती है और बदलने वाले इतिहासकार होते हैं। तथ्यों के चयन में भूलें—वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रखने पर—होती रहती हैं किंतु एक बार जो भूल परम्परा से चल पड़ती है उसको बदलना नये इतिहासकार के लिए बहुत कठिन हो जाता है। शुक्लजी के चयन में साहित्य की उनकी अपनी पहचान तो है किंतु काल निर्णय सम्बंधी दोष है और इन दोषों को संदिग्धावस्था में जानते हुए निर्णय शुक्लजी ने दे दिए हैं। कहना यह चाहता हूँ कि 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखने में आचार्य शुक्ल के पास पहले से ही चयन किए गए तथ्य मौजूद थे। उनके चयन की मीमांसा आचार्य शुक्ल ने अर्थात शिवसिंह सेंगर या मिश्रबंधुओं के चयन की मीमांसा—ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किए बिना ही तथ्यों को अपने ढंग से चयन कर इन पर विचार किया। स्वयं आचार्य शुक्ल के इतिहास लिख लिए जाने के बाद तथ्यों पर विचार नहीं हुआ है, ऐसी बात नहीं है। डॉ० रामकुमार वर्मा का 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में तथ्यों का वैज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास है। उक्त इतिहास में तथ्याख्यान कम और तथ्यानुसंधान अधिक है। तथ्यानुसंधान की दृष्टि से डा० किशोरीलाल गुप्त ने 'सरोज सर्वेक्षण' प्रस्तुत किया है। तथ्यों की वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक मीमांसा—इस सर्वेक्षण में उत्तम रीति से की गई है। किंतु बात यह है कि आचार्य शुक्ल इस प्रकार से तथ्य मीमांसा में गये ही नहीं हैं। वस्तुतः वे न शिवसिंह सरोज का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते थे और न ही मिश्रबंधु विनोद का। वे तथ्यों के लिए पूर्णतः उन पर निर्भर रहे। उनका काम अलग था और वह उन्होंने किया है। आचार्य शुक्ल का कारण हम तथ्य संकलन के लिए नहीं अपितु तथ्य चयन के लिए और उसमें

भी तथ्याख्यान के लिए करते हैं। तथ्यों का अम्बार आचार्य शुक्ल के सामने ही इतना अधिक था कि सबको स्वीकार कर चलना उन्हें उचित नहीं लगा। इस सम्बन्ध में आज हम उन्हें दोष दे सकते हैं कि सब कुछ सामने होते हुए भी उन्होंने अमुक-अमुक तथ्य की उपेक्षा क्यों की ? हमारे लिए यह कहना जितना सुगम है, उनके लिए काल की निश्चित सीमा में सभी तथ्यों को—इतिहास की 900 वर्षों की परम्परा को—देख लेना कितना कठिन था। आज तक भी आचार्य शुक्ल के बाद में इतने लम्बे काल प्रवाह को एक ही व्यक्ति द्वारा उपलब्ध तथ्यों में से चयन करना और एक निश्चित दृष्टिकोण से उन तथ्यों पर वैज्ञानिक ढंग से विचार करना कितना कठिन काम है। आचार्य शुक्ल को सब कुछ अकेले करना पड़ा है—किसी रिसर्च स्कॉलर की सहायता लिए बिना ही करना पड़ा है। बाद में इतिहास लिखने वालों ने आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण को किसी-न-किसी रूप में स्वीकार किया है। इस स्वीकृति में युग की सीमाएँ बनाकर अधिक विचार हुआ है और इसी तरह विधाओं की या और प्रकार की सीमाएँ बना दी गई हैं। जितने व्यापक फलक पर आचार्य शुक्ल 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' पर विचार करते हैं, उतने व्यापक फलक पर बाद में किसी ने भी विचार नहीं किया है। इसीलिए आज 1929 ई० के बाद 1986 ई० तक 57 वर्ष व्यतीत होने पर भी—हिन्दी साहित्य की आधी शताब्दी का आधुनिक काल का इतिहास उसमें न होने पर भी—हमारे लिए यह ग्रंथ आलोक स्तम्भ बना हुआ है। इसका एकमात्र कारण 'साहित्य विवेक' और 'व्यापक ऐतिहासिक दृष्टिकोण' है। तथ्यों का चयन तालिकाएँ और सूची बनाने के रूप में नहीं अपितु तथ्यों को बोलने लगाना है और उनकी पहचान करवाना है। इसके लिए बौद्धिक ईमानदारी की आवश्यकता है, जिसका पालन अपने ढंग से आचार्य शुक्ल ने किया है।



3 काल विभाजन

3 1 ऐतिहासिक आवश्यकता

काल विभाजन ऐतिहासिक आवश्यकता है। यह वर्गीकरण है। तथ्यो को क्रम मे रखकर किसी निश्चित दृष्टिकोण से वर्गीकरण करना पडता है। इस दृष्टि से दो प्रधान तत्त्व वर्गीकरण मे या काल विभाजन मे प्रधान मानने चाहिए— (1) तथ्य, और (2) काल या फलक। तीसरा प्रधान तत्त्व दृष्टिकोण का है— इतिहासकार के दृष्टिकोण को कहना चाहिए। यो तो जिस किसी ने इतिहास-लेखन का कार्य किया है, वह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप मे काल विभाजन पर विचार करता ही है। इसके अभाव मे इतिहास लिखा ही नही जा सकता। यह ऐतिहासिक आवश्यकता है।

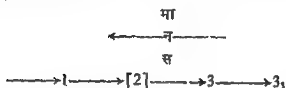
3 2 सिद्धान्त स्वरूप

साहित्य का इतिहास वस्तुत कवियो, लेखको या रचनाकारो तथा उनकी कृतियो का इतिहास होता है। साहित्यकार एव साहित्यिक कृतियो का [क्योकि साहित्य के इतिहास के मूल तथ्य यही होते हैं] इतिहास ही साहित्य का इतिहास होगा। किसी साहित्यकार एव उसकी रचनाओ को परम्परा मे उसकी स्थिति की पहचान करवाना साहित्य के इतिहास का प्राथमिक काय है। रने वेलेक और आस्टिन वारेन यही कहते हैं। लिखा है—

> किसी परम्परा मे प्रत्येक कृति की सही स्थिति निश्चित करना साहित्यिक इतिहास का पहला काम है।" 4

परम्परा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। परम्परा मे एक तो काल का प्रवाह रहता है और दूसरे इतिहास-लेखन काय से सम्बन्धित तथ्यो का उनके काल-क्रम मे पहचानने की प्रक्रिया रहती है। उदाहरण के लिए हम गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरित मानस को ही लें। हिन्दी साहित्य की रचनाओ मे रामचरित मानस की रचना का काल निर्धारण हो और अनन्तर मानस से पूर्व हिन्दी मे लिखी गई रचनाओ के क्रम मे मानस कहाँ बैठता है, यह देखना

आवश्यक है और ठीक इसी तरह मानस ने स्वयं हिन्दी में जो परम्परा बनाई वह अनन्तर कैसे चलती रही है। आज तक के इतिहास-बोध पर मानस के प्रभाव की पहचान भी होनी चाहिए। इस तथ्य को मैं रेखांकित करते हुए स्पष्ट करना चाहता हूँ—



मानस की पहचान के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से काल के लम्बे प्रवाह में 1, 2 तथा 3 संख्याएँ लिखी हैं। इनमें संख्या 2—मानस के लिखे जाने का काल है। संख्या 1—मानस को लिखने में तुलसी की पूर्व परम्परा है, जो ऐतिहासिक रूप से प्राप्त हुई है—[नाना पुराण] उसकी पहचान अलग से होगी। और संख्या 3 के अन्तर्गत मानस की परम्परा से सम्बन्धित वह रूप है जो बाद में मानस के कारण हिन्दी में स्थापित हुई। पूर्व तथा पश्च की परम्पराओं को पहचानकर मानस को मानस की रचनाकाल के समय में उसकी स्थिति का मूल्यांकन प्रस्तुत करना मानस के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जानना है। इसी तरह हमें साहित्यिक कृतियों तथा कवियों तथा लेखकों की पहचान का परम्परा में रखकर—परम्परा से तटस्थ रखकर नहीं—विवेचन करना साहित्य के इतिहास की प्राथमिक आवश्यकता है। संख्या 3 और 3_1 में अन्तर पहचान के परिप्रेक्ष्यों के हैं। यह अन्तर काल में भी सम्भव है और मूल्यांकन करनेवाले इतिहासकारों में भी। इस तरह कहने के लिए स्थूल रूप में तीन संख्याएँ दी गई हैं। तुलसीदास के मूल्यांकन पर या किसी भी पक्ष पर जितनी अधिक रचनाएँ होंगी, उन सबके परिप्रेक्ष्यों का कालक्रम में रखकर देखना आवश्यक है। मोटी बात यह है कि परम्परा में कृति की ठीक पहचान हो जाए तो हम इतिहास की पहचान के अधिक निकट होंगे। काल का फलक जितना विस्तृत होगा परम्परा का स्वरूप भी तथा बल भी उसी प्रकार होगा। किसी रचना को 25 वर्षों के परिप्रेक्ष्य में रखना और किसी रचना को 1000 वर्षों के परिप्रेक्ष्य में रखने में बहुत अन्तर है। लोग तो आजकल एक वर्ष की रचनाओं में उत्तम रचना कौन सी है, इस पर विचार करने लगे हैं। यह 1984 की सर्वोत्तम कृति है यह 1985 की या 1986 की। एक वर्ष का काल फलक बहुत छोटा है और इस तरह से रचना का मूल्यांकन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नहीं हो सकता। यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बहुत विस्तृत है। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में—परम्परा में रख कर—कृतियों की और कृतिकारों की पहचान आचार्य शुक्ल ने की है। साहित्येति-

3 काल विभाजन

3 1 ऐतिहासिक आवश्यकता

काल विभाजन ऐतिहासिक आवश्यकता है। यह वर्गीकरण है। तथ्यो को क्रम मे रखकर किसी निश्चित दृष्टिकोण से वर्गीकरण करना पडता है। इस दृष्टि से दो प्रधान तत्त्व वर्गीकरण म या काल विभाजन मे प्रधान मानने चाहिए—(1) तथ्य, और (2) काल का फलक। तीसरा प्रधान तत्त्व दृष्टिकोण का है—इतिहासकार के दृष्टिकोण को कहना चाहिए। यो तो जिस किसी ने इतिहास-लेखन का काम किया है, वह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप म काल विभाजन पर विचार करता ही है। इसके अभाव मे इतिहास लिखा ही नही जा सकता। यह ऐतिहासिक आवश्यकता है।

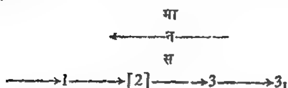
3 2 सिद्धात स्वरूप

साहित्य का इतिहास वस्तुत कवियो, लेखको या रचनाकारो तथा उनकी कृतियो का इतिहास होता है। साहित्यकार एव साहित्यिक कृतियो का [क्योकि साहित्य के इतिहास के मूल तथ्य यही होते हैं] इतिहास ही साहित्य का इतिहास होगा। किसी साहित्यकार एव उसकी रचनाओ को परम्परा म उसकी स्थिति की पहचान करवाना साहित्य के इतिहास का प्राथमिक काय है। रेन वलेक और आस्टिन वारेन यही करते हैं। लिखा है—

> किसी परम्परा म प्रत्येक कृति की सही स्थिति निश्चित करना साहित्यिक इतिहास का पहला काम है।"-4

परम्परा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। परम्परा मे एक तो काल का प्रवाह रहता है और दूसरे इतिहास लेखन काय से सम्बधित तथ्यो को उक्त काल क्रम म पहचानने की प्रक्रिया रहती है। उदाहरण के लिए हम गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरित मानस को ही लें। हिदी साहित्य की रचनाओ म रामचरित मानस की रचना का काल निर्धारण हो और अनन्तर मानस से पूव हिदी म लिखी गई रचनाओ के क्रम मे मानस कहा बठता है, यह देखना

आवश्यक है और ठीक इसी तरह मानस ने स्वय हिन्दी म जो परम्परा बनाई वह अनन्तर कसे चलती रही है। आज तक के इतिहास-बोध पर मानस के प्रभाव की पहचान भी होनी चाहिए। इस तथ्य को मैं रेखाकित करते हुए स्पष्ट करना चाहता हूँ—



मानस की पहचान के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से काल के लम्बे प्रवाह मे 1, 2 तथा 3 सख्याएँ लिखी हैं। इनमे सख्या 2—मानस के लिखे जाने का काल है। सख्या 1—मानस को लिखने मे तुलसी की पूव परम्परा है, जो ऐतिहासिक रूप से प्राप्त हुई है—[नाना पुराण] उसकी पहचान अलग से होगी। और सख्या 3 के अन्तगत मानस की परम्परा से सम्बन्धित वह रूप है जो बाद मे मानस के कारण हिन्दी मे स्थापित हुई। पूव तथा पश्च की परम्पराओ को पहचानकर मानस को मानस की रचनाकाल के समय मे उसकी स्थिति या मूल्याकन प्रस्तुत करना मानस के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जानना है। इसी तरह हमे साहित्यिक कृतियो तथा कवियो तथा लेखको की पहचान को परम्परा मे रखकर—परम्परा से तटस्थ रखकर नही—विवेचन करना साहित्य के इतिहास की प्राथमिक आवश्यकता है। सख्या 3 और 3_1 मे अन्तर पहचान के परिप्रेक्ष्यो के है। यह अन्तर काल म भी सभव है और मूल्याकन करनेवाले इतिहासकारो मे भी। इस तरह कहन के लिए स्थूल रूप मे तीन सख्याएँ दी गई हैं। तुलसीदास के मूल्याकन पर या किसी भी पथ पर जितनी अधिक रचनाएँ होगी, उन सबके परिप्रेक्ष्यो को काल क्रम मे रखकर देखना आवश्यक है। मोटी बात यह है कि परम्परा मे कृति की ठीक पहचान हो जाए तो हम इतिहास की पहचान के अधिक निकट होगे। काल का फलक जितना विस्तत होगा परम्परा का स्वरूप भी तथा बल भी उसी प्रकार होगा। किसी रचना को 25 वर्षों के परिप्रेक्ष्य मे रखना और किसी रचना को 1000 वर्षों के परिप्रेक्ष्य मे रखन म बहुत अन्तर है। लोग तो आजकल एक वष की रचनाओ मे उत्तम रचना कौन सी है, इस पर विचार करने लगे हैं। यह 1984 की सर्वोत्तम कृति है, यह 1985 की या 1986 की। एक वष का काल फलक बहुत छोटा है और इस तरह से रचना का मूल्याकन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म नहीं हो सकता। यह सब मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आचाय रामचन्द्र शुक्ल का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बहुत विस्तृत है। इस विस्तत परिप्रेक्ष्य म—परम्परा मे रख कर—कृतियो का और कृतिकारो की पहचान आचाय शुक्ल ने की है। साहित्येति-

हास के इस मूल सिद्धान्त का पालन आचार्य शुक्ल के इतिहास मे इतना सफल है कि उनके अन्य दोषो की ओर ध्यान नही जाता।

3 3 औसतवाद

काल विभाजन मे आचार्य शुक्ल ने औसतवाद का सिद्धान्त रूप म पालन किया है। औसतवाद म गुण-दोष दोनो ही हैं। सिद्धान्त रूप म औसतवाद का पालन करना कठिन प्रतीत हो सकता है किन्तु आचार्य शुक्ल के इतिहास मे इस सिद्धान्त का पालन बडी कठोरता के साथ किया गया है। काल विभाजन का मूल आधार यह औसतवाद है। अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए आरम्भ म वक्तव्य के अन्तगत आचार्य शुक्ल लिखते हैं—

> "जिस काल खड के भीतर किसी विशेष ढग की रचनाओ की प्रचुरता दिखाई पडी है वह एक अलग काल माना गया है और उसका नाम करण उन्ही रचनाओ के स्वरूप के अनुसार किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक काल का एक निर्दिष्ट सामान्य लक्षण बनाया जा सकता है। किसी एक ढग की रचना की प्रचुरता से अभिप्राय यह है कि शेष दूसरे की रचनाओ मे से चाहे किसी (एक) ढग की रचना ले लें वह परिमाण म प्रथम के बराबर न होगी।"[25]

प्रचुरता के स्पष्टीकरण के लिए पुन आगे लिखा—

> 'जैसे यदि किसी काल मे पाच ढग की रचनाएँ 10, 6, 7 और 2 के क्रम से मिलती हैं तो जिस ढग की रचना की 10 पुस्तकें हैं, उसकी प्रचुरता कही जाएगी यद्यपि शेष और ढग की सब पुस्तकें मिलकर 20 हैं यह तो हुई पहली बात। दूसरी बात है ग्रथो की प्रसिद्धि। किसी काल के भीतर जिस एक ही ढग के बहुत अधिक ग्रन्थ प्रसिद्ध चले आते हैं उस ढग की रचना उस काल के लक्षण के अन्तगत मानी जाएगी, चाहे और दूसरे दूसरे ढग की अप्रसिद्ध और साधारण कोटि की बहुत-सी पुस्तकें भी इधर उधर कोनो म पडी मिल जाया करें। प्रसिद्धि भी किसी लोक प्रवत्ति की प्रतिध्वनि है।"[26]

—यही शुक्ल जी का औसतवाद है। आचार्य शुक्ल ने दो शब्दो का विशेष प्रयोग किया है—(1) प्रचुरता और (2) प्रसिद्धि। इन्ही के आधार पर नाम करण किया गया है। अपने सिद्धान्त का मण्डन करने के उपरान्त वीरगाथाकालीन 12 रचनाओ का उल्लेख किया और आदिकालीन रचनाओ को वीरगाथात्मक कहा। इसी आधार पर नामकरण भी किया।

3 4 काल विभाजन

हिंदी साहित्य के इतिहास को आचाय शुक्ल ने चार कालो मे विभाजित किया है। वह इस प्रकार है—[27]

1 आदिकाल [वीरगाथा काल सवत् 1050-1375]
2 पूव मध्यकाल [भक्तिकाल, 1375-1700]
3 उत्तर मध्यकाल [रीतिकाल 1700 1900]
4 आधुनिक काल [गद्यकाल 1900-1984]

यह इतिहास 934 वर्षों का है ये नामकरण सिद्धान्त के रूप मे आज भी स्वीकृत है। व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण इन नामो के स्थान पर अन्य नाम सुझाए गए हैं किन्तु जो भी नाम सामने आए हैं वे सभी नाम व्यापक फलक के सदभ मे देखने पर स्वीकृत नही हो सके हैं। एक भक्ति काल के नाम को छोडकर अन्य सभी नामो पर प्रश्न किए गए हैं। वीरगाथा काल के सदभ मे ही विचार करें तो आदिकाल, चारण काल, सिद्ध सामन्त काल आदि नाम विद्वानो ने प्रस्तुत किए हैं।[28] इसी तरह रीतिकाल के लिए शृंगार काल नाम भी आया है।[29] इन सब नामो पर आगे और विचार होगा। नामकरण के सम्बन्ध मे हम दो दृष्टियो से विचार करना चाहिए। (1) सिद्धान्त के रूप मे तथा (2) व्यावहारिक रूप मे सिद्धान्त रूप म आचाय शुक्ल का वर्गीकरण आज भी ठीक है। सिद्धान्त के रूप म आचाय शुक्ल जिन प्राथमिक कारणो को प्रस्तुत करते हैं, उन्हे ठीक मान लें और विचार करें तो बात ठीक लगती है। सिद्धान्त रूप मे वीरगाथा काल नाम उचित है। जिन बारह रचनाओं का उल्लेख आचाय शुक्ल करते हैं और उनका विश्लेषण जिस ढग मे वे अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए करते हैं, उन सबको देख जाएँ तो वीरगाथाकाल नामकरण उचित लगता है। वीरगाथाकालीन सामग्री पर विचार करते समय उक्त सामग्री को आचाय शुक्ल ने आरम्भ मे ही सदिग्ध कहा है। सारी सामग्री को उन्होंने प्रामाणिक कहा ही कहा है। सदिग्ध सामग्री को 1050 1375 सवत् के बीच मानें और उक्त सामग्री की प्रवत्तियो पर [12 रचनाओ म] विचार करें तो सिद्धान्त रूप मे वीरगाथा काल ही कहना पडेगा।

सिद्धान्त रूप मे आचाय शुक्ल अपनी जगह ठीक हैं। अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए शुक्ल जी ने वीरगाथाकाल मे फुटकल खाता भी खोला है। सच तो यह है कि फुटकल खाते का खोलना औसतवादी सिद्धान्त की रक्षा करना है। अमीर खुसरो तथा विद्यापति को फुटकल खाते मे रखा गया है। काल क्रम मे वे वीरगाथाकाल म बैठते हैं किन्तु प्रवृत्ति वीरगाथात्मक नही है। इसलिए फुटकल खाते म इन कवियो को जगह देनी पडी। सच तो यह है कि फुटकल खाते के ये दोनों ही कवि सदिग्ध नही हैं। कम से कम वीरगाथाकालीन कवियो की तरह

नही है किन्तु सिद्धान्त रक्षा की बात है और इस नाते इन्हे अलग मान लिया गया है।

व्यावहारिक रूप मे विचार करें तो वीरगाथाकाल मे आचार्य शुक्ल ने जिन रचनाओ को वीरगाथा काल म 1050 1375 सवत् के अन्तगत रखा था, वे बाद के विद्वान उक्त काल म उन्हे मानते ही नही। नीव कच्ची होने के कारण नामकरण का क्या हो ? जड ही कट जाती है। आदिकाल कहना अधिक ठीक माना गया है। व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने पर सिद्धात की नीव ही लडखडा जाती है।

3 5 आधुनिक काल गद्यकाल

आचाय शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल कहा है। यह ध्यान देन की बात है कि शुक्ल जी ने जहा वीरगाथा काल, भक्तिकाल और रीतिकाल नामकरण किया ठीक वैसे ही आधुनिक काल का नामकरण उन्होने गद्यकाल किया। गद्य को उन्होने विशेष प्रवृत्ति के रूप म स्वीकार किया। लिखा है—

> "आधुनिक काल मे गद्य का आविर्भाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है इसलिए उसके प्रसार का वणन विस्तार से करना पडा है। इस थोडे से काल के बीच मे हमारे साहित्य के भीतर जितनी अनेकरूपता का विकास हुआ है, उतनी अनेकरूपता का विधान कभी नही हुआ था।"[30]

शुक्लजी काल और साहित्य की प्रवत्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। काल पर ध्यान रखन के कारण उन्हें उत्थान दिखलाने पडे। आधुनिक काल का आरम्भ उन्होन सवत 1900 से ही माना है। किन्तु प्रथम उत्थान सवत 1925 से सवत 1950 तक माना है। द्वितीय उत्थान सवत 1950 से 1975 तक का है और तीसरा उत्थान सवत 1975 के बाद का है। जो उनका अपना समसामयिक काल है। ये उत्थान उन्हे दो बार दिखलाने पडे। गद्य का खण्ड उन्होने अलग किया और पद्य का अलग। प्रथम उत्थान से पहले के पच्चीस वर्ष को उत्थान के साथ नही जोडा है। गद्य की स्थिति मे वे उस काल का 'गद्य साहित्य का आविर्भाव' बतलाते हैं और पद्य की स्थिति म 'पुरानी धारा' कहते हैं चूकि आधुनिककाल को गद्यकाल कहा गया है अत गद्य का विकास उन्होने आरम्भ मे लिखा है। एक प्रकार से इस विकास म उन्होन भाषा का विकास प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा गद्य और खडीबोली गद्य दोनो पर अलग अलग विस्तार से लिखा है। शुक्ल जी के आधुनिक काल का मूल ढाचा यही है।

3 6 आधुनिक काल का प्रतिशत

आधुनिक काल पर लिखना खतरे से खाली नही है, इस बात को शुक्लजी अच्छी तरह जानते थे। उन्होने लिखा भी है—

> "पहले मेरा विचार आधुनिक काल को 'द्वितीय उत्थान' के आरम्भ तक लाकर उसके आगे की प्रवृत्तिया का सामान्य और सक्षिप्त उल्लेख करके ही छोड देने का था, क्योंकि वतमान लेखको और कवियों के सम्बन्ध मे कुछ लिखना अपने मे एक बला मोल लेना ही समझ पडता था। पर जी न माना। वर्तमान सहयोगियो तथा उनकी अमूल्य कृतियो का उल्लेख भी थोडे बहुत विवेचन के साथ डरते-डरते किया गया।"[31]

खतरा मोल लेते हुए, क्षमा याचना के साथ शुक्लजी ने लिख ही दिया है। वस्तुत जिनके नाम छूट गये हो, उनके लिए क्षमा याचना की है और कारण भी दिया है कि यह सारा कार्य जल्दी मे करना पडा है। शुक्लजी ने कवियो तथा लेखको का उल्लेख किया तो है किन्तु उनका ध्यान सामान्य लक्षण और प्रवृत्तिया को दिखलाने पर केंद्रित रहा है। व्यक्ति की तुलना मे उन्होने विषय पर अधिक लिखा है और इसमे कोई व्यक्ति छूट भी गया तो विशेष अन्तर नही पडता। शुक्लजी के इतिहास-लेखन का फलक व्यापक था। व्यक्ति विशेष पर अपना ध्यान केंद्रित रखते हुए उन्होने इतिहास लिखा ही नही। इसी तरह विधा विशेष पर भी उन्होंने इतिहास को विभाजित नही किया। मोटे रूप मे गद्य और पद्य—यही उनका विभाजन है। और इस विभाजन म भी दोनो ही स्थानो पर उत्थान बराबर दिखलाए गए हैं। पच्चीस वष की एक पीढी दिखलाते गये हैं। यह विचार करने की बात है कि 722 पृष्ठो के इतिहास म [नवम सस्करण, सवत 2009 के आधार पर कह रहा हूँ] 320 पष्ठ आधुनिक काल को दिये गये हैं। प्रतिशत के हिसाब से देखें तो रीतिकाल तक का भाग 56 प्रतिशत है और आधुनिक काल का प्रतिशत 44 है। इसलिए हम शुक्लजी के आधुनिक काल को अलग से पहचानना चाहिए।

3 7 रीतिकाल तक का इतिहास और आधुनिक काल

रीतिकाल तक के इतिहास म और आधुनिक काल के इतिहास मे वैसे ही भेद है। यहा मुझे तीनो कालो का उल्लेख तुलनात्मक रूप मे ही करना पड रहा है। हम अनुभव करते हैं कि रीतिकाल तक इतिहास रचनाओ पर अधिक आधारित है। रचयिताओ का व्यक्तिमूलक प्रामाणिक विवरण रीतिकाल तक बहुत कम उपलब्ध है। प्राय अनुमान से काम चलाया गया है। इस अनुमान मे मूल स्रोत कम और दूसरे प्रकार के स्रोत अधिक रहे हैं। वस्तुत इस प्रकार का इतिहास

वस्तुमूलक ही होता है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि कवियों का प्रामाणिक जीवन उपलब्ध नहीं है। शुक्लजी ने इस मामले में जिस आधार सामग्री का उपयोग किया उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। सच्चाई यह है कि शुक्लजी ने इतिहास को इति-वृत्तात्मक स्थिति से मुक्त किया और अपने इतिहास को समीक्षात्मक रूप दिया। रचनाओं पर उनका ध्यान अधिक रहा और रचयिताओं पर कम। रचनाएँ उपलब्ध थीं। उनके मूल्यांकन का काम उनका अपना है और वह मौलिक है। रचनाओं में उन्होंने साहित्य की प्रवृत्तियाँ खोजीं और युग विशेष की प्रवृत्तियाँ के परिप्रेक्ष्य में रखकर परखा। राजनीतिक परिस्थितियों के आलोक में साहित्यिक प्रवृत्तियों का विवेचन किया। इसमें उनका ध्यान रचनाओं की विषयवस्तु पर अधिक रहा है। रचनाओं के कलात्मक स्वरूप पर, रचनाओं की भाषाओं पर भी उनके विचार मिलते हैं किन्तु इतिहास में उन्होंने सबसे अधिक महत्त्व रचनाओं की विषय वस्तु पर दिया है। रीतिकाल को कोई शृंगार काल कहना चाहे या कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रधानता देना चाहे और तदनुसार किसी नये नामकरण के सम्बन्ध में विचार करें तो इसमें उसे छूट है। किन्तु ध्यान से देखने पर 'रीति' शब्द में जो व्याप्ति है, वैसी व्याप्ति शृंगार में नहीं है। रीति के साथ बद्ध और मुक्त के संकेत शुक्ल जी ने वर्गीकरण किए बिना ही अपने वक्तव्य में दे दिये हैं। वीरगाथाकाल भक्तिकाल तथा रीतिकाल नामकरणों में शुक्लजी के मौलिक चिन्तन को स्वीकार करना ही पड़ता है। वीरगाथाकाल की सामग्री अप्रामाणिक हो सकती है किन्तु संदिग्ध सामग्री पर उन्होंने पद्धति का सूत्र दिया है। प्रवृत्ति को पहचानने का आधार उन्होंने वीरगाथाकाल की रचनाओं के आधार पर ही दिया है। ऊपर प्रवृत्ति की इस पहचान को औसतवाद कहा गया है। अपने इस सिद्धान्त की रक्षा में उन्होंने वीरगाथाकाल और भक्तिकाल में फुटकल खाते खोले है। विद्यापति, केशव और अन्य महत्त्वपूर्ण कवियों को शुक्लजी ने फुटकल खाते में डाल दिया। आधुनिक काल के नामकरण पर विचार करते समय रीतिकाल तक नामकरणों पर तुलनात्मक रूप में विचार करना ही चाहिए। क्या शुक्लजी आधुनिक काल में अपने सिद्धान्त की रक्षा कर सके हैं? शुक्लजी का औसतवाद आधुनिक काल में भी अपनी जगह स्थिर है। शुक्लजी ने अनुभव किया कि आधुनिक काल में गद्य की प्रवृत्ति प्रधान है। गद्य को शुक्लजी प्रवृत्ति रूप में अनुभव करते हैं। पद्य पर अलग से उसी क्रम में उत्थान बतलाते हुए—विचार करते हुए भी—पद्य को आधुनिक काल की प्रधान प्रवृत्ति नहीं मानते। गद्य का ही प्रधान मान लेने के कारण इस काल को उन्होंने गद्यकाल कह दिया। इस तरह शुक्लजी ने अपने सिद्धान्त की—औसतवाद की—रक्षा की है।

3 8 आधुनिक काल गद्य और पद्य

गद्य और पद्य दोनो ही विधामूलक नाम हैं। जैसे पद्य के विविध रूप मिलते हैं, उसी तरह गद्य के भी विविध रूप मिलते हैं। इन रूपो को प्रधान मानकर इतिहास नहीं लिखा गया है। गद्य-पद्य का स्थूल विभाजन करते हुए भी उनका ध्यान विषय-वस्तु पर रहा है और वे सामान्य लक्षण तथा प्रवृत्तियो की खोज करते रहे हैं। गद्यकाल तो औसत मूलक नाम है। गद्य की रचनाएँ पद्य की तुलना मे अधिक मिलती हैं—इसीलिए यद्यपि गद्य की रचनाएँ परिमाण मे अधिक हैं, तथापि साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ जितनी पद्य मे सम्बद्ध रही हैं, उतनी गद्य से नही। साहित्य की केन्द्रीय विधा कविता ही है। आधुनिक काल म शुक्लजी पहले गद्य का विकास बतलाते हैं। इस विकास मे उन्होने भाषा का इतिहास भी लिखा है। यह इतिहास ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो का है। खडी बोली की प्रतिष्ठा पहले पद्य म हुई और बाद मे पद्य में। खडी बोली का इतिहास लिखते हुए शुक्लजी उनके प्राचीन रूपा पर भी विचार करते हैं और उदाहरण भी देते हैं। हिन्दी के साथ साथ वे उर्दू पर भी तुलनात्मक रूप मे विचार करते हैं। उनका यह क्रम इसीलिए भी है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रजभाषा के साथ जुडा हुआ है। ब्रजभाषा का उत्तराधिकार खडी बोली का मिला है। उत्तराधिकार के रूप मे बोली का परिवतन भाषा और साहित्य के इतिहास मे प्रधान घटना है। आधुनिक काल मे हुआ यह क्रान्तिकारी परिवतन है। इस परिवतन म गद्य-साहित्य ने पहल की है, इसलिए भी शुक्लजी आधुनिक काल को गद्य-काल कहते है। ब्रजभाषा ने पद्य का उत्तराधिकार जल्दी से खडी बोली को नही दिया। स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पद्य के लिए ब्रजभाषा को स्वीकार करते थे और गद्य के लिए खडी बोली के। इस तरह एक ही युग म दोनो बोलियो से हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध बना हुआ था। जिस वर्ष भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु हुई थी उसी वर्ष आचाय रामचन्द्र शुक्ल का जन्म हुआ—1884 ई०। भारतेन्दु का मण्डल शुक्लजी ने अपने बचपन मे देखा है। भारतेन्दु के प्रति शुक्ल जी के मन मे बचपन से ही श्रद्धा रही है। शुक्लजी के पिताजी प०चन्द्रबली शुक्ल भारतेन्दुजी के नाटक घर पर सुनाया करते थे। भारतेन्दु के संस्कार शुक्लजी को अपने पिता से प्राप्त हुए। चिंतामणि भाग 3, मे प्रेमघन की छाया स्मृति निबन्ध पढ जाएँ तो भारते[illegible] के प्रति शुक्लजी के आकर्षण के कारण मालूम हो जाएँगे। मैं यहा पर भारतेन्दु का उल्लेख विशेष रूप से इसलिए कर रहा हूँ कि भारतेन्दु काल भाषा के विकास से सीधा जुडा हुआ है। ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो ही भारतेन्दु काल मे हिन्दी साहित्य की भाषाएँ रही है। यह ध्यान देने की बात है कि आधुनिक काल मे ब्रजभाषा मे (शुक्लजी के आधुनिक काल म) जो काव्य लिखे गए या पद्य साहित्य रचा गया, उसे शुक्लजी 'पुरानी धारा' —के रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

शुक्लजी के पद्य खण्ड में सबसे पहले (1900 संवत से 1925 तक) पुरानी धारा ही है। यह पुरानी धारा पूरी तरह से व्रजभाषा से सम्बंधित काव्य की है। इस धारा को शुक्लजी आधुनिक काल के उत्थान के रूप में स्वीकार नहीं करते। एक ओर तो पद्य के क्षेत्र में पुरानी धारा चल रही थी तो दूसरी ओर खड़ी बोली गद्य का आविर्भाव हो रहा था। आधुनिक काल के पच्चीस वर्ष तो ऐसे ही संक्रमण में निकल गए। उस युग के गद्यकारों का उल्लेख हम ऐतिहासिक रूप में करते हैं। वस्तुतः यह इतिहास भाषा का इतिहास अधिक है। इसीलिए शुक्लजी ने विस्तार से भाषा का इतिहास लिखा भी है।

3.9 काल विभाजन की सीमाएँ

काल विभाजन से सम्बंधित नामकरण आचार्य शुक्लजी के किए हुए आज भी मोटे रूप में प्रचलित हैं। आचार्य शुक्ल के नामकरणों के विकल्प के नामकरण व्यापक रूप में प्रचलित नहीं हो पाए हैं। ऐसा क्यों है? विचार करना चाहिए। इस तरह से विचार करने से ही हम काल विभाजन की सीमाओं को भी जान पाएँगे।

आदिकाल का नामकरण आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' किया। वीरगाथा काल नाम रचनाओं की प्रवृत्ति के—प्रचुरता और प्रसिद्ध के आधार पर—आधार पर किया गया है। अन्य जो भी नाम विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं, उनमें आदिकाल, सिद्ध-सामंत काल तथा चारण-काल प्रधान हैं। आदिकाल नामकरण तो नामकरण नहीं है। और वह नाम आचार्य शुक्ल ने भी किया है। आदिकाल का नामकरण—साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर होना चाहिए। ऐसी बात न तो सिद्ध सामंत काल में है और न ही चारण में है। वर्ग विशेष के नामकरण में व्याप्ति नहीं है। चाहे सिद्ध हो, सामंत हो या चारण हो—सभी नाम वर्ग विशेष के द्योतक ही हैं। जिन रचनाओं के आधार पर वीरगाथा काल नामकरण किया गया—वे रचनाएँ ही बाद की प्रमाणित हुईं अतः नामकरण को स्वीकार करने में आपत्ति उठाई गई। वीरगाथा के विकल्प में 'आदिकाल'—ही (कुछ नाम न देना ही) ठीक मान लिया गया। वीरगाथाकालीन रचनाओं को संदिग्ध मानते हुए भी उनकी प्रवृत्ति को स्वीकार किया गया है। इतना ही है कि रचनाओं का काल आगे बढ़ गया है। इस तथ्य को छोड़ दें और राजनीतिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में रचनाओं की सामग्री देखें तो वह शुक्लजी के वीरगाथाकाल की प्रतीत होगी। आचार्य शुक्ल के इतिहास में जितनी रचनाओं का उल्लेख इस काल के अन्तर्गत प्रधान रूप से हुआ है, उनको छोड़कर अन्य रचनाओं को इस युग की रचनाओं के रूप में अब भी ठीक से स्थापित किया नहीं जा सका है। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने ही काम किया है। आचार्य शुक्ल के साथ आचार्य द्विवेदीजी की

तुलना आगे प्रस्तुत कर रहा हूँ। यहाँ पर इतना ही कहना चाहता हूँ कि आचार्य शुक्ल के नामकरण की सीमाओं को पहचानते हुए पुनर्विचार करें तो अब भी अन्य नामों की तुलना में वीरगाथात्मक प्रवृत्ति को प्रधान मानना पड़ेगा और वीरगाथाकाल नाम उचित लगता है। बात इतनी ही है कि शुक्लजी के काल की सीमाओं को बदलना पड़ सकता है।

रीतिकाल के लिए अलंकार काल या शृंगारकाल जो नाम प्रस्तावित किये गये उनकी तुलना में 'रीति'—नामकरण में व्याप्ति अधिक होने के कारण यही नाम प्रचलित है। आधुनिक काल के सम्बन्ध में ऊपर विस्तार से लिखा गया है।

आचार्य शुक्ल के नामकरणों में साहित्य की विषय-वस्तु को ध्यान में रखा गया है। इस विषय-वस्तु को सामाजिक तथा राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में रखकर जनता की बदलती चित्तवृत्तियों को पहचानने का प्रयत्न युग के परिप्रेक्ष्य में है। चाहे जिस काल का नामकरण हो, उक्त नामकरण को व्यापक फलक में रखकर परखा गया है। ऐसा करते समय महत्त्वपूर्ण कवियों और उनकी रचनाओं को इन नामकरणों से अलग भी किया गया—फुटकल खाते में उन्हें रख दिया गया है। आचार्य शुक्ल के इतिहास के फुटकल खाते, नामकरणों (काल विभाजन कह लीजिए) की सीमाओं को बतलाते हैं। अन्य विद्वानों ने जो नामकरण विकल्प में किया है, उन्होंने फुटकल खाता खोला कहाँ है। फुटकल खाता खोलना स्वयं अपने सिद्धान्त का कठोरता से पालन करने के समान है। शुक्लजी का सिद्धान्त अपनी जगह ठीक है। साहित्येतिहास लेखन में नियम रूप में सिद्धान्त पालन में सफल ही हुए हैं। घूम फिरकर उन्हीं नामकरणों की ओर बाद के इतिहासकार चले आते हैं। शुक्लजी के नामकरणों की सीमाएँ सभी बतलाते हैं किन्तु विकल्प में नया नाम उतनी ही शक्ति के साथ आज भी सामने आए हैं, यह नहीं कहा जा सकता।



4 वीरगाथाकाल । परम्परा और परम्परा

4 1 दो परम्पराएँ

आदिकालीन साहित्य का नामकरण आचाय शुक्ल ने वीरगाथाकाल किया है। आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी इस काल की सामग्री पर पुनर्विचार करते हैं। उन्हें वीरगाथाकाल नाम उचित नही लगा। कुछ नामकरण नही करना चाहते। आदिकाल ही कह दते हैं। कालवाची नाम है। प्रवृत्तिमूलक नाम नही दिया। दोनो आचार्यों की परम्पराएँ अलग-अलग हैं। आचाय शुक्ल की परम्परा अलग है और आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की परम्परा अलग है। दोनो परम्पराओ के पहचान की आधारभूत सामग्री वीरगाथाकालीन/आदिकालीन—साहित्य की सामग्री मे निहित है। आदिकाल की पहचान म दोनो का परिचय इस नाते दने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

4 2 दूसरी परम्परा की खोज

डा० नामवरसिंह की सन् 1982 ई० मे दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक प्रकाशित हुई है। दूसरी परम्परा की खोज करनेवाले आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी जी हैं। प्रश्न होगा प्रथम परम्परा किसकी ? उत्तर स्पष्ट है—आचाय रामचन्द्र शुक्ल की। डा० नामवर सिंह लिखते हैं—

> "हिन्दी आलोचना की तात्कालिक परम्परा से द्विवेदीजी का सीधा सम्बन्ध नही है। उनकी पहली पुस्तक 'सूर साहित्य' देखने से नही लगता कि इसका लेखक शुक्लजी की 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका से परिचित है, जबकि वह पुस्तक 1924 मे ही द्विवेदीजी के काशी मे रहते निकल चुकी थी। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' 'सूर साहित्य' की ही स्थापनाओ का व्यापक पटभूमि पर विकास है, जिसमे प्रसगवश सूर और जायसी के विषय मे शुक्लजी की मान्यताओ के सहमतिपरक उल्लेख और स्वय आलोचक के रूप मे शुक्लजी के महत्त्व की स्वीकृति के बावजूद उनकी भक्ति की उदय-सम्बन्धी धारणा के विपरीत

मान्यता रखी गई है। इसीक्रम में 'कबीर' 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के ही एक अंग का विस्तृत विवेचन और विकास है जिसमें शुक्लजी से भिन्न मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। निश्चय ही 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' 'भूमिका' के ही दूसरे अंग का विस्तार है पर इसमें शुक्लजी की वीरगाथा सम्बन्धी मान्यता का स्पष्ट प्रत्याख्यान करते हुए कथानक रूढ़ियों और काव्य रूपों के क्षेत्र में सर्वथा नई बातें सामने रखी गई हैं।"[3]

यह लिखने के बाद डा० नामवरसिंह परम्पराओं को अलगाते हैं। उनका कहना है कि आचार्य द्विवेदी की परम्परा दूसरी ही है—

"इस चिंतन क्रम में द्विवेदीजी जहां परम्परा से प्राप्त हिन्दी साहित्य के इतिहास के मानचित्र को बदलकर एक दूसरा मानचित्र प्रस्तुत करते हैं, वहीं साहित्य सम्बन्धी एक नयी मान्यता भी सामने आती है। इस प्रकार एक नये इतिहास के साथ आलोचना का एक नया मान भी दृष्टिगोचर होता है। कबीर के साथ इतिहास की एक भिन्न परंपरा ही नहीं आती, साहित्य को जांचने परखने का एक प्रतिमान भी प्रस्तुत होता है।"[33]

डॉ० नामवरसिंह यह भी मानते हैं कि आचार्य द्विवेदी शुक्लोत्तर आलोचकों की तरह शुक्लजी से आतंकित नहीं हैं—

"अपने समकालीन अन्य शुक्लोत्तर आलोचकों की तरह द्विवेदीजी न तो कहीं शुक्लजी से आतंकित हैं, न ग्रस्त —मुख्यतः शान्तिनिकेतन काल की कृतियों में। इस मामले में वे कबीर के समान ही सौभाग्य से शास्त्र-वंचित थे। कबीर को हिन्दुओं का शास्त्र पढ़ने को नहीं मिला तो द्विवेदीजी को हिन्दी आलोचना का शास्त्र। एक बात और है जिसमें वे कबीर से ज्यादा भाग्यशाली थे। वे अपने निर्माण काल में काशी से दूर रहे—शुक्लजी आदि की छाया से। इसलिए न उन्हें हिन्दी की यह महान परम्परा विरासत में मिली, न इस परम्परा से खामखाह उलझने की कड़वाहट ही महसूस हुई।"[34]

सच तो यह है कि डॉ० नामवरसिंह का ध्यान आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पर केन्द्रित है और वे यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आतंक आचार्य द्विवेदीजी पर नहीं है। ठीक है, मान लेते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परम्परा को आतंकित करनेवाली परम्परा कहना क्या है? क्या इसमें आचार्य शुक्ल का ऐतिहासिक महत्व स्थापित नहीं होता? प्रकारान्तर से अस्वीकृति में स्वीकृति है। डॉ० नामवरसिंह से सहमत होते हुए मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि आचार्य शुक्ल की परम्परा से मुक्त रहकर—शान्ति निकेतन में दूर रहते

हुए—आचाय हजारीप्रसाद द्विवेन्दीजी ने जो काय किया, वह दूसरी परम्परा का है। कि तु शुक्लजी की परम्परा क्या है? यह प्रश्न रह जाता है।

4 3 आदिकालीन साहित्य और आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी

आदिकालीन साहित्य आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी के अध्ययन का मुख्य क्षेत्र रहा है। इस काल के साहित्यिक अध्ययन ने द्विवेन्दी जी को नयी गरिमा प्रदान की है। वस्तुत यह शा ति निकेतन की देन है। द्विवेन्दीजी को इतिहास चिन्तन का आयाम आदिकालीन साहित्य से प्राप्त हुआ है। आदिकालीन साहित्य का अध्ययन करते करते द्विवेन्दीजी अपभ्र श भाषाओ की रचनाओ का अध्ययन भी करते हैं। कबीर क सम्ब ध म उनका अध्ययन आदिकालीन साहित्य को भूमिका मे रखते हुए ही प्रस्तुत है। अपभ्र श की परम्परा हि दी म बतलाते है। आचाय शुक्ल के सम्ब ध म कुछ कहने से पूव द्विवेदीजी की मा यताएँ ही लिखता हूँ। वे लिखते है—

> "दुर्भाग्यवश, हि दी साहित्य के अध्ययन और लोक चक्षु गोचर करने का भार जिन विद्वानो ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हि दी साहित्य का सम्ब ध हि दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढग से सोचने का मौका देते हैं—एक यह कि हि दी साहित्य एक हतदप पराजित जाति की सम्पत्ति है, इसलिए उसका महत्त्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान पतन के साथ अगागि-भाव से सम्बद्ध है, और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निर तर पतनशील जाति की चि ताओ का मूत प्रतीक है, जो अपने आपमे कोई विशेष महत्त्व नही रखता। मैं इन दोनो बातो का प्रति-वाद करता हूँ।"[35]

'हि दी साहित्य की भूमिका'—पुस्तक के आरम्भ के पष्ठ की ये पक्तियाँ हैं। 'भारतीय चि ता का स्वाभाविक विकास' बतलाते हुए निष्कप रूप मे लिखते है—

> 'जब ध्यान से देखिये तो हि दी मे दो प्रकार की भि न भि न जातियो की दो चीजें अपभ्र श से विकसित हुई है—(1) पश्चिम अपभ्र श स राजस्तुति, ऐहिकतामूलक शृ गारी काव्य, नीतिविषयक फुटकल रच नाएँ और लोकप्रचलित कथानक। और (2) पूर्वी अपभ्र श से निगु णिया स तो की शास्त्र निरपेक्ष उग्र विचारधारा, झाड फटकार, अक्खडपन, सहज शू य की साधना, योग पद्धति और भक्तिमूलक रच नाएँ।"[36]

और इसी प्रसग मे अ तिम टिप्पणी इस प्रकार है—

"समग्र भारतीय साहित्य मे हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसमे आर्यों की रूढ़िप्रियता, कर्मनिष्ठा के साथ ही-साथ पूर्वी आर्यों की भावप्रवणता, विद्रोही वृत्ति और प्रेम निष्ठा का मणि-काचन योग हुआ है। इस बात को ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण ही केवल ऊपरी बातो को देखने वाले कभी इस भाव को मुसलमानी प्रभाव कह देते हैं। कभी कभी विचारवान पण्डित भी ऐसी ऊटपटांग बातें कह जाते हैं जो नही कही जानी चाहिए थी।"[37]

नाम न लेते हुए भी आचार्य शुक्ल को लक्ष्य म रखते हुए ये पक्तियाँ लिखी गई हैं यह बात स्पष्ट हो जाती है। ये वचन ऐसे हैं, जिनम ऐतिहासिक चिन्तन है और तथ्यो को परखने तथा देखने का अपना दृष्टिकोण है। द्विवेदीजी की वीरगाथाकालीन—आदिकालीन कह लीजिए—मान्यताओ पर आचार्य शुक्ल की मान्यताओ के सदर्भ मे ही डॉ॰ रामविलास शर्मा ने विस्तार से विचार किया है।[38] काल विभाजन के सबध मे द्विवेदीजी के इतिहास-लेखन पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा लिखते हैं—

"जो लोग शुक्लजी को विवेकपूर्ण न मानते हो, वे कृपया द्विवेदीजी के इतिहास का ढाँचा और विषयवस्तु देखें और इस बात पर विचार करें कि द्विवेदीजी जसे विद्वान ने शुक्लजी की ही व्यवस्था स्वीकार की है या नही। आदिकाल से लेकर छायावाद तक द्विवेदीजी ने उन्ही धाराओ के हिसाब से इतिहास लिखा है, जिनका विवेचन शुक्लजी ने किया था। एक अन्तर है। द्विवेदीजी ने आदिकाल की तरह आधुनिक काल नाम तो रखा है लेकिन मध्यकाल नाम छोड दिया है। आदि है और आधुनिक है तो मध्य भी होना चाहिए। उसे छोडने का कोई सगत कारण नही दिखाई देता। इसके सिवा और युगो मे जहाँ द्विवेदीजी ने उन्ही साहित्यिक धाराओ और प्रवृत्तियो का मुख्य माना है जिनकी चर्चा शुक्लजी ने की थी, वहाँ आदिकाल की मुख्य धारा उन्होंने स्पष्ट नही की। जैसे मध्यकाल म—यह नाम न लेत हुए भी—उन्होने भक्ति और रीतिकाव्यो की चर्चा की है, वस आदिकाल के अन्तगत ऐसा कोई शीर्षक नही दिया।"[39]

यहाँ पर मैं एक बात स्पष्टतापूर्वक कहना चाहता हूँ आचार्य शुक्ल ने अपना इतिहास लेखन जितनी दढता के साथ व्यवस्थित रूप देते हुए लिखा है, उतनी दृढता के साथ और व्यवस्थित रूप देते हुए द्विवेदीजी न नही लिखा है। आदिकालीन साहित्य का अध्ययन उन्होने विस्तार से किया है और इस अध्ययन मे भी द्विवेदीजी का ध्यान तथ्याख्यान पर ही अधिक रहा है। शान्ति निकेतन के वातावरण ने द्विवेदीजी को आदिकालीन साहित्य तथा सत साहित्य की ओर आकृष्ट किया

है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ-साथ क्षितिमोहन सेन, मुनि जिन विजयजी आदि के सम्पर्क के कारण कबीर संत साहित्य, सिद्ध और नाथ साहित्य तथा अपभ्रंश साहित्य की ओर उनका ध्यान गया है। इस अध्ययन की ओर प्रवृत्त होने पर भी द्विवेदीजी के व्यक्तित्व में सृजनात्मक आवेग अधिक था। शांतिनिकेतन ने उनको शोध-कार्य करने के लिए विवश किया। 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद'—शोधकार्य है। इसी शोध कार्य का सृजनात्मक रूप 'बाणभट्ट की आत्मकथा' है। मूल में न तो इतिहास लिखने की इच्छा रही और न समीक्षा की। व्यावसायिकता ने द्विवेदीजी को समीक्षालेखन और इतिहास लेखन की ओर मोड़ा है। उनके निबन्धों में सृजनात्मक आवेग ही अधिक है। ऐसी स्थिति में द्विवेदीजी का शोध-कार्य व्यवस्थित नहीं हो सका है और न साहित्य-लेखन व्यवस्थित हुआ है। इतनी बात सच है कि द्विवेदीजी ने आदिकालीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन व्यापक परिप्रेक्ष्य में किया। यही यही अपभ्रंश और हिन्दी की निर्माणकालीन स्थितियां को गहराई से पहचाना। उनकी यह पहचान आदिकालीन साहित्य की विषय वस्तु के विश्लेषण के कारण बनी है। जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथ्यानुसंधान में अधिक प्रवृत्त नहीं हुए वैसे ही द्विवेदीजी भी अपना ध्यान तथ्यानुसंधान में अधिक नहीं रखते। उदाहरण के लिए पृथ्वीराजरासो के संबंध में उनके अध्ययन को देखें। पृथ्वीराजरासो की विषय वस्तु का [काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित संस्करण की विषय-वस्तु का] जितनी गहराई से अध्ययन किया उतना वे उसकी प्रामाणिकता का अध्ययन नहीं करते। *हस्तलिखित* प्रतियों की छानबीन द्विवेदीजी ने कहां की है? 'संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो'—का उनका सम्पादन है किन्तु वह उक्त सभा के बृहत संस्करण के आधार पर किया हुआ है। तथ्यानुसंधान के रूप में निर्णय कम और तथ्याख्यान के रूप में निर्णय देते हैं। रासो के संबंध में लिखा है—

> "पृथ्वीराज का दरबारी कवि चन्द बलद्दिय (चन्दबरदाई) हिन्दी भाषा का आदि कवि माना जाता है। असल में यह अपभ्रंश का अन्तिम कवि अधिक है और हिन्दी का आदि कवि कम। क्योंकि उस का काव्य अब जिस रूप में पाया जाता है वह रूप मौलिक नहीं है। इस ग्रंथ में इतनी प्रक्षिप्त बातें आ घुसी हैं कि ओझाजी जैसे ऐतिहासिक पंडित इसे एकदम अप्रामाणिक और जाली ग्रंथ समझते हैं। हाल में पुरातन प्रबन्ध संग्रह के प्रकाशन के बाद से यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई है कि चन्द का मूल काव्य बहुत कुछ अपभ्रंश की प्रकृति का था और आज वह जिस रूप में मिलता है वह उसका अत्यंत विकृत रूप है।"[40]

द्विवेदी जी का यह कथन तथ्याख्यान के रूप में ही है। तथ्यानुसंधान में वे

अधिक प्रवृत्त नही हुए। आदिकालीन सामग्री का जितना गहन अध्ययन द्विवेदीजी ने किया है, उतना शुक्लजी ने नही किया। जो कुछ शुक्ल जी ने लिखा है, वह इतिहास ग्रंथ मे ही है। आदिकालीन साहित्य के किसी कवि पर उनकी स्वतत्र पुस्तक नही है। द्विवेदीजी ने तो इस विषय पर पुस्तकें लिखी हैं। पुस्तकें भी सामा य नही—शोधपरक पुस्तकें हैं। फिर भी वे आदिकालीन साहित्य का नामकरण नही कर पाए। कारण यह है कि आदिकालीन साहित्य का सर्वेक्षण तो वे कर लेते हैं, सर्वेक्षण के साथ साथ विश्लेषण भी वे उत्तम रीति से करते हैं किन्तु अपनी अधीत सामग्री को व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप वे नही दे सके हैं। शोधपूण सामग्री पर द्विवेदीजी सास्कृतिक टिप्पणियाँ उत्तम लिखते है। इस मामले मे उनका चि तन मौलिक है। उनका ऐतिहासिक चि तन काल की रेखाओ म बैठता नही। शुक्लजी अपने ऐतिहासिक चि तन मे द्विवेदीजी से अधिक वैज्ञानिक हैं। द्विवेदीजी की भाव प्रवणता शुक्लजी मे नही है। शुक्लजी ने देखा विद्यापति की रचनाएँ वीरगाथात्मक नही है—तुर त उसे फुटकल खाते मे डाल दिया। शुक्लजी जितने निणयात्मक रूप म अपने कथनो को प्रस्तुत करते हैं, उतने द्विवेदी जी नही करते। सक्षेप मे आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदीजी का महत्व इस नाते है कि उ होने आदिकालीन साहित्य की रचनाओ का आन्तरिक और व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया। यही नही, इस आधार पर अपने मे एक नई ऐतिहासिक दृष्टि विकसित की जिसने उनके ऐतिहासिक चि तन को सावभौमिक रूप दिया।

4 4 आचाय शुक्ल की परम्परा

आचाय शुक्ल की परम्परा को स्पष्ट करना आवश्यक है। कारण यह है कि द्विवेदीजी की परम्परा दूसरी है—अत प्रथम परम्परा का प्रश्न रह जाता है। इतनी बात तो स्पष्ट है और जिसे डा० नामवरसिंह ने भी स्वीकार किया है कि दूसरी परम्परा कबीर की है और प्रथम परम्परा तुलसी की है। स्पष्ट रूप से लिखा भी है—

> "शुक्लजी के लोकधर्म के प्रतीक तुलसीदास हैं, द्विवेदीजी के कबीर। भक्ति के स्तर पर बहुत कुछ समान व्यवहार के स्तर पर एकदम विरुद्ध। यो स्वय तुलसी कबीर का बिना नाम लिये स्पष्ट विरोध करते हैं और शुक्लजी की इसमे सहमति है। द्विवेदीजी इस बात में तुलसीदास से भी असहमत हैं और शुक्लजी से भी। क्या यह विरोध भी परम्परा म शामिल है? यदि हाँ तो फिर विकास है या ह्रास?"[11]

और भी लिखा है—

"जो लोग यह मानते हैं कि द्विवेदीजी शुक्लजी की परम्परा को विकसित नही कर सके, वे यह भी मानते हैं कि उनकी समन्वयवादी प्रवृति के कारण ऐसा न हो सका। विद्रोही कबीर का पक्षधर समन्वयवादी और समन्वय के आदर्श तुलसीदास के पक्षधर क्रान्तिकारी ? क्या उलटबासी है।"[42]

आचार्य शुक्ल की परम्परा को द्विवेदी जी से अलगा कर रखा गया है। इस तरह से अलगाने मे मुझे कोई लाभ नही दिखलाई देता। मैं यह मानता हूँ कि आचार्य शुक्ल की परम्परा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे पहचानना चाहिए। व्यक्तित्वो की टकराहट मे आमने सामने परम्पराओ को प्रस्तुत करना ठीक नही हैं। सच्चाई यह है कि डा० रामविलास शर्मा को लक्ष्य मे रखकर डा० नामवर सिंह यह सब लिखते है, ऐसा प्रतीत होता है। डॉ० रामविलास शर्मा को शुक्लजी की विरासत की चिन्ता है। ऐसा उन्होंने लिखा भी है—

'निश्चय ही शुक्लजी की इस क्रान्तिकारी विरासत की ज्यादा जानकारी होनी चाहिए और तत्परता से उसकी रक्षा होनी चाहिए।'[43]

डा० रामविलास शर्मा ने दोनो व्यक्तित्वो की तुलना सन्त साहित्य मे योगियो की भूमिका के अन्तर्गत की भी है। आचार्य द्विवेदीजी के कथनो मे जो विरोधाभास मिलता है, उसे डॉ० रामविलास शर्मा ने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है "बहुत विस्तार मे न जाते हुए सक्षेप मे यह कहना चाहता हूँ कि आचार्य द्विवेदीजी ने अपना काम सहज रूप मे जारी रखा या शुक्लजी का विरोध करना लक्ष्य बनाया—इस बात का निर्णय करना चाहिए।

4 5 तुलसी की परम्परा

आचार्य शुक्ल की परम्परा—तुलसी की परम्परा है। इस तथ्य का उल्लेख ऊपर हो ही गया है। इस सम्बन्ध मे आगे विस्तार से विचार करना है। वीरगाथा काल के सन्दर्भ मे और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी को ध्यान मे रखते हुए यहा इतना ही कहना अभिप्रेत है कि तुलसी की परम्परा का उपयोग आचार्य शुक्ल ने अपने लेखन मे प्राय सर्वत्र किया है। वीरगाथाकाल की रचनाओ का अध्ययन करने मे या सन्त साहित्य के अध्ययन मे भी तुलसीदास प्रच्छन्न रूप मे विराजमान रहे हैं। हम शुक्लजी की परम्परा पर, शुक्लजी की स्थापनाओ पर विचार न कर केवल वीरगाथाकालीन तथा सत साहित्य के सदर्भ मे ही विचार कर लें तो इस तरह से विचार करना वीरगाथाकालीन सामग्री के परिप्रेक्ष्य मे होगा। वीरगाथाकाल की—आदिकाल की कह लीजिए—बहुत सी सामग्री को शुक्लजी ने नोटिस मात्र कहकर छोड दिया है। शुक्लजी के साहित्यिक विवेक ने कई रचनाओ को साहित्य की कोटि से बाहर कर दिया। इतिहास लिखते समय

अपने वक्तव्य म शुक्लजी ने आदिकालीन सामग्री पर विचार करते समय — मिश्रबन्धुओ की नामावली की 10 पुस्तको का उल्लेख करते हुए सन को खाते से काट दिया । काटने के आधार दिये । आचाय शुक्ल लोक साहित्य के अध्ययन मे प्रवृत्त नही हुए । रहस्यवाद, गुह्य साधना, एव नाथ योगियो के साहित्य को शुक्लजी ने बहुत महत्व नही दिया । अपभ्र श साहित्य की प्रवत्तियो को हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियो से जोडने का प्रयास जसे द्विवेदीजी करते हैं, वह प्रयास भी शुक्लजी ने नही किया । द्विवेदीजी तो मानते हैं—

> "आधुनिक युग के आरम्भ होने के पहले हिन्दी कविता के प्रधानत ■ अग थे—डिंगल कवियो की वीरगाथाएँ, निर्गुणिया सन्तो की वाणिया, कृष्णभक्ति या रागानुगा भक्तिमाग के साधको के पद, रामभक्ति या वैधी भक्तिमार्ग के उपासको की कविताएँ, सूफी साधना से पुष्ट मुसलमान कवियो के तथा ऐतिहासिक हिन्दू कवियो के रोमास और रीतिकाव्य । हम इन छहो धाराओ की आलोचना अगर अलग-अलग करें तो देखेंगे कि ये छहो धाराएँ अपभ्र श कविता का स्वाभाविक विकास है ।"[45]

आचाय द्विवेदीजी 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' को सहज विकास रूप मे प्रस्तुत करना चाहते हैं । अपभ्र श भाषा—देशी भाषा—हिन्दी भाषा के विकास को वे इसी रूप मे परखते भी हैं । उनकी विवेचना का मूल आधार, अपभ्र श साहित्य और आदिकालीन साहित्य है । प्रश्न है आचाय शुक्ल के इतिहास मे इन प्रश्नो पर विचार हुआ है या नही ? और हुआ है तो किस रूप मे ?

शुक्लजी की परम्परा को समझने के लिए भक्तिकालीन मान्यताओ को केन्द्र मे रखकर वीरगाथाकालीन सामग्री को पीछे लौटकर देखना चाहिए । ठीक इसी तरह आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की परम्परा को स्पष्ट करने के लिए अपभ्र श साहित्य और आदिकालीन साहित्य को केन्द्र मे रखकर बाद के साहित्य पर विचार करना चाहिए । आचाय शुक्ल का लेखन विद्रोही स्वरूप का नही है । ज्ञान की स्पष्टता उनम अधिक है । अपनी बात को व बडी सफाई और ताकत के साथ कहना खूब जानते हैं । और बडी बात यह है कि विचारो की स्पष्टता क लिए वे अपने कथनो को दोहराते रहते हैं । दोहराने को पुन पुन कहने वाली प्रवत्ति का दोष न मानकर विचारो की दढता समझना चाहिए । शुक्लजी का लेखन स्थापनाओ क रूप मे है जो बात ठीक नही लगी—बडी सफाई से उस बात से अलग हो जाएँगे । कारण भी द देंगे । इस तरह से साफ साफ कहने का गुण होन के कारण वे औरो का भारी पडते है । आचाय शुक्ल का लेखन द्विवेदीजी क पहले का है । द्विवेदीजी की रचनाओ को पढकर आचाय शुक्ल ने नही लिखा है । इस तुलना म द्विवदीजी ने शुक्लजी को पढकर लिखा है । एक

बात और ध्यान मे रखनी चाहिए—इतिहास बोध की दृष्टि से दोनो के काल म अन्तर है। आचार्य शुक्ल ने स्वतन्त्र भारत देखा ही नही। 1942 ई० आन्दोलन से पहले ही शुक्लजी चल बसे। आचार्य शुक्ल का लेखन इस नाते—उनके अपने समय के सदर्भ मे—अधिक क्रान्तिकारी है। शुक्लजी की पूर्व परम्परा म शुक्लजी कितना आगे आए यह देखना आवश्यक है। आचार्य शुक्ल की परम्परा को आचार्य शुक्ल से पहले चली आई हुई परम्परा के रूप म देखना चाहिए। ठीक वैसे ही जैसे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की परम्परा को शुक्लजी से अलग बतलाने का प्रयत्न हुआ है। आचार्य द्विवेदीजी ने स्वतन्त्र भारत देखा है। दूसरी बात यह है कि अपने निर्माण काल मे वे शान्तिनिकेतन मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ रहे। हम यह मान लेते है कि द्विवेदीजी का निर्माण शुक्लजी की छाया मे नही हुआ। जब वे वाराणसी आए, उस समय उनका सामना शुक्लजी की परम्परा से हुआ। आचार्य द्विवेदीजी ने अपने अध्ययन क्षेत्र के सदर्भ म ही शुक्लजी का प्रत्याख्यान किया है। शुक्लजी से जो क्षेत्र छूट गया उस क्षेत्र को उन्होने अपनाया। ऐसी स्थिति म हम द्विवेदीजी को शुक्लजी के विरोध मे खडा करने से क्या लाभ होगा ? शुक्लजी द्वारा स्थापित कवियो को द्विवेदीजी अस्वीकार कहा करते है ? मैं कहना यह चाहता हूँ कि शुक्लजी के विस्तृत पटल म से एक क्षेत्र विशेष तक द्विवेदीजी अपने को सीमित कर लेते है। शुक्लजी से द्विवेदीजी आतकित नही है, कहने म ही शुक्लजी का महत्व ज्ञापित नही होता क्या ? शुक्लजी तो रहे नही फिर आतकित होने न होने की बात ही क्यो ? मूल बात यह है कि दोनो परम्पराओ को अलगाने मे लाभ नही है। आचार्य शुक्ल से द्विवेदीजी ने अर्जित ही किया है। जो क्षेत्र छूट गया है, उस पर गहराई से काम किया है। द्विवेदीजी की परम्परा को शुक्लजी की परम्परा के पूरक रूप मे देखने से ही लाभ होगा यही मैं कहना चाहता हूँ।

4 6 पूरक परम्परा

वीरगाथाकालीन सामग्री के सदर्भ मे या नामकरण के सदर्भ म ही आचार्य शुक्ल के साथ आचार्य द्विवेदीजी की तुलना पूरक परम्परा के रूप मे करनी चाहिए। आचार्य शुक्ल न अपनी प्रतिभा से आदिकालीन सामग्री के आधार पर ही अपने साहित्य के इतिहास का ढाचा तैयार किया है और वह व्यवस्थित तथा सद्धान्तिक रूप म ठीक है। जितनी रचनाएँ उनके देखने म आई उनके आधार पर ही उन्होने अपना निर्णय दिया है हम मान लेते हैं कि द्विवेदीजी ने यही क्षेत्र अपने लिए चयन किया। द्विवेदीजी ने अधिक सामग्री देखी। अपभ्रश की रचनाओ और बाद की देशी भाषाओ की रचनाओ को भी पढा। द्विवेदीजी इतिहास की परम्परा को अखण्ड प्रवाहित रूप मे पहचानते भी हैं। ऐसी स्थिति मे निश्चित

ही हम यह जानना चाहगे कि शुक्लजी से जो काम छूट गया या रह गया, उसको पूरक रूप मे द्विवेदीजी करें। वीरगाथाकाल—नामकरण को नकार गये। किन्तु नये नामकरण के सम्बन्ध में मौन हो गये। जिस क्षेत्र मे गति रही और गहराई म गये, उस क्षेत्र को व्यवस्थित रूप द्विवेदीजी ने नही दिया। नकारना जितना सरल है सकारना उतना ही कठिन है। स्थापनाओ का विरोध तो कर सकते हैं किन्तु स्थापनाओ को नकार कर विकल्प मे ऐसी स्थापना करना कि लोग पुरानी स्थापनाओ को भूल ही जाए कितना कठिन है। स्वय आचाय शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' सामने आया तो उससे पूव के इतिहास—मिश्रबन्धु विनोद ही लीजिए—क्या विस्मत नही हो रहे हैं। इतिहासो का इतिहास लिखा जाय तो विनोद का महत्व अपना जगह है, यह बात अलग है। क्या इस तरह आचाय शुक्ल के इतिहास के बाद वीरगाथा के सम्बन्ध मे ही आचाय द्विवेदीजी कोई विकल्प प्रस्तुत कर सके हैं—अपनी सामग्री को व्यवस्थित रूप क्या उन्होंने—समग्र हिन्दी साहित्य के सदभ मे—दिया है? यह प्रश्न ज्यो का त्यो रह जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास म वीरगाथा काल की सामग्री को नवीन सदर्भो मे गहराई के साथ द्विवदीजी ने प्रस्तुत किया है इस उपलब्धि को हम स्वीकार करते हैं किन्तु उसका उपयोग इतिहास पटल पर व्यवस्थित रूप म स्थापित करने के सदभ मे नही हुआ है। मैं यहाँ इस बात को स्वीकार करता हूँ कि शुक्लजी के बाद म ऐतिहासिक चिन्तन करने वालों मे आचाय द्विवेदीजी का नाम अग्रणी है। उनके मौलिक चिन्तन को भी स्वीकार करता हूँ। किन्तु शुक्लजी की कच्ची नीव को—वीरगाथाकाल सम्बन्धित नीव को—द्विवेदीजी दृढशक्ति प्रदान नही कर सके। यह बात मैं केवल इतिहास सिद्धान्त के रूप म कह रहा हूँ। द्विवेदीजी के मौलिक काय को स्वीकार करते हुए—शुक्लजी की परम्परा को पूरक रूप मे अपनाते हुए आदिकालीन—वीरगाथाकालीन सामग्री पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।



5 भक्तिकाल साहित्यिक अभिरुचि और समीक्षा

5 1 इतिहास और समीक्षा

आचाय रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास, इतिहास होते हुए भी समीक्षा का ग्रन्थ भी है। इतिहास के रूप म उसका महत्व कम हो भी जाए—आज तो कम नही है— तब भी समीक्षा के रूप म उसका पठन जारी रहेगा। यो हम इतिहास को 'समीक्षात्मक इतिहास' भी कह सकते हैं। इतिहास के साथ समीक्षा की सगति उत्तम रीति से बैठाई गई है।

समीक्षा के रूप मे शुक्लजी ने तीन कवियो पर स्वतन्त्र रूप से लिखा है। तीनो ही कवि भक्तिकाल मे हैं—1 गोस्वामी तुलसीदास, 2 सूरदास, तथा 3 मलिक मौहम्मद जायसी। तुलसी पर उनकी स्वतन्त्र पुस्तक है—गोस्वामी तुलसीदास। जायसी पर उनकी भूमिका—जायसी ग्रथावली की भूमिका - प्रसिद्ध है। सूरदास कवि थे सम्बन्ध म उन्होने जो कुछ स्पष्ट रूप मे लिखा है, उसका सम्पादन बाद मे आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है। उक्त पुस्तक का नाम सूरदास' है। चिन्तामणि भाग 1 तथा भाग 2 के निबन्धो को हम निबन्ध अधिक मानते हैं। सन 1982 ई० डा० नामवरसिंह ने उनके निबन्धो का एक और सकलन चिन्तामणि भाग 3 के नाम से प्रकाशित किया है। निबन्धो के इन सकलनो म कुछ लेख समीक्षा सम्बन्धी मिल जाएगे, जो सामयिक आवश्यकताओ के कारण लिखे दिए गए। इन निबन्ध सग्रहो को छोड दें तो उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास' ही रह जाता है। इन सब ग्रथो मे समीक्षा के तत्त्व अधिक है। इस नाते हम उन्हें समीक्षक अधिक मानते हैं। शुक्लजी का इतिहास ग्रथ समीक्षा से बचा हुआ नही है।

5 2 साहित्यिक अभिरुचि

आचाय शुक्ल की साहित्यिक अभिरुचि का आधार भक्ति साहित्य है। किसी समीक्षक के समीक्षा लेखन पर विचार करते समय हमारा ध्यान उसकी साहित्यिक

अभिरुचि की ओर जाता ही है। यह ध्यान रहे कि सच्चा समीक्षक वही होता है जिसकी अपनी कोई साहित्यिक अभिरुचि होती है। समीक्षक का काय साहित्यिक अभिरुचि को विकसित करना है। जो समीक्षक इस काय का निर्वाह अपनी समीक्षाओ मे नही कर पाता, उसकी समीक्षाओ मे अपेक्षित बल भी नही होता। समीक्षक यदि अपनी समीक्षाओ मे तटस्थ रहता है उसका प्रभाव पाठको या श्रोताओ पर नही पडता। समीक्षक को इस नाते कुछ सीमा तक पक्षधर होना पडता है व जिसे वह गलत समझता है, उसका विरोध करना पडता है। समीक्षाओ मे बल निष्ठा और विश्वास से आता है। आचाय रामचद्र शुक्ल की समीक्षा मे समीक्षक के गुण मिलते है। शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि भक्तिकाल के प्रधान कवियो के आधार पर बनी है। शुक्लजी के काव्य प्रतिमानो, समीक्षा के प्रतिमानो तथा मूल्याकन के प्रतिमानो पर भक्ति साहित्य की छाप है। और फिर शुक्लजी ने भक्ति साहित्य पर जो भी लिखा वह भक्त बनकर नही लिखा है। जो कुछ लिखा है वह समीक्षक के रूप मे है इतिहासकार के रूप म है और निबध कार के रूप मे है और इस तरह इन रूपो मे उनका लेखन इतना प्रखर हो गया है कि हम उन्हें आचाय कहने लगते हैं। शुक्लजी ने भक्ति-साहित्य को साहित्यिक गरिमा और दीप्ति प्रदान की। शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि म सौदय बोध भी खोजना हो तो भक्ति साहित्य को ही आधार बनाना होगा।

5 3 भक्त कवि

शुक्लजी के समीक्षक रूप पर विचार करते समय प्रथम अवलोकनीय तथ्य यह है कि उन्होने साहित्यिक कृतियो से सीधा साक्षात्कार किया है। साहित्य का अध्ययन करते करते जिस कवि विशेष पर उनकी दृष्टि स्थिर हो गई, वह कवि तुलसी है। उनकी समीक्षाओ मे 'तुलसी' समीक्षा के प्रतिमान के रूप मे काम करता दिखलाई देता है। शुक्लजी सूरदास के सम्बन्ध म लिखते समय तुलसी को भूलते नही है। गोस्वामी तुलसीदास पर उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तक छोटी है जबकि जायसी पर उन्होने अधिक लिखा है और श्रम से लिखा है किन्तु फिर भी उनके लेखन म 'तुलसी' उनके मस्तिष्क मे रहे है। हम तो यह अनुभव करते है कि तुलसी के समस्त लेखन म जसे राम केन्द्र म रहे है, ठीक उसी तरह शुक्लजी के समस्त लेखन म तुलसी' केन्द्र मे रहे हैं। इस तरह तुलसी को प्रतिमान मान लेने से उनकी समीक्षा प्रबल भी हुई और कुछ हद तक निर्बल भी।

5 4 तुलसीदास

समीक्षात्मक पुस्तको म शुक्लजी की एक ही पुस्तक उनके जीवनकाल मे प्रकाशित हुई है और वह है—'गोस्वामी तुलसीदास'। इस पुस्तक के सशोधित

सस्करण के वक्तव्य मे शुक्लजी लिखते है—

> "इस पुस्तक के प्रथम सस्करण मे गोस्वामीजी का जीवनचरित भी गौण रूप मे सम्मिलित था। पर जीवन वृत्त सग्रह इस पुस्तक का उद्देश्य न होने के कारण इस सस्करण से 'जीवन खड' निकाल दिया गया है। अब पुस्तक अपने विशुद्ध आलोचनात्मक रूप मे पाठको के सामने रखी जाती है।

इन पक्तियो मे शुक्लजी के इस कथन पर ध्यान देना चाहिए—'विशुद्ध आलोचनात्मक' शुक्लजी की और कोई पुस्तक विशुद्ध आलोचनात्मक नही है। सूरदास तथा जायसी पर उनकी जो पुस्तकें प्रकाशित हैं, उन्हें हम विशुद्ध आलोचनात्मक पुस्तक नही कह सकते। बात यह है कि स्वतत्र कवियो पर उनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित है और वे कवि तुलसी, सूर तथा जायसी हैं। ये तीनो ही भक्ति-काल के कवि है। कबीर छूट गये हैं। इन तीनो कवियो की समीक्षाओ पर विचार करें तो शुक्लजी के समीक्षक व्यक्तित्व का उदघाटन हो सकता है। बात यह है कि हम इस बात की खोज करें कि कवि तुलसी, शुक्लजी की समीक्षाओ मे प्रतिमान के रूप म किस तरह काय करते रहे हैं? इस प्रकार तुलनात्मक रूप म विचार करने से—अन्य कविया की समीक्षाआ के साथ ही हम शुक्लजी के विचारो को जान भी सकेंगे

सूरदास तथा जायसी दोनो कवियो पर शुक्लजी न तुलसी की अपेक्षा अधिक श्रम किया है। उनका यह श्रम उनकी सूरदास [आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित] पुस्तक तथा जायसी ग्रथावली की भूमिका को देखने से सहज ही म ज्ञात हो जाएगा। जिस कवि को शुक्ल जी चाहते रहे हैं, उस पर उन्होने श्रम नही किया। उसे हम श्रम कहे या कवि का सहज साक्षात्कार कह, यह प्रश्न उपस्थित होगा। तुलसी शुक्लजी के व्यक्तित्व के—शुक्लजी के साहित्यिक व्यक्तित्व का कहिए—इतने सहज अग हो गए हैं कि शुक्लजी को तुलसी के लिए विशेष श्रम की आवश्यकता ही नही रही। उनकी 'गोस्वामी तुलसी दास' पुस्तक पढ जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। शुक्लजी की सहज चलती शैली इस पुस्तक म मिलेगी। इतनी सहज शैली मे उनकी दूसरी पुस्तकें नही हैं। सामान्य रूप म शुक्लजी का लेखन बौद्धिक होता है। उनकी पुस्तको को गम्भीर माना जाता है। 'गोस्वामी तुलसीदास पुस्तक गभीर नही है। इस पुस्तक म व सीधे पाठको से जुडते हैं और तुलसी के प्रति उनके जो साहित्यिक विचार हैं, उसे वे सहज रूप म प्रस्तुत करते हैं। जो कवि उनकी साहित्य समीक्षा का प्रतिमान रहा है, उसके सम्बन्ध म लिखते समय वे बहुत सहज हो गये हैं।

5 5 जायसी

तुलसी के बाद हमे सूरदास पर विचार करना चाहिए किन्तु सूरदास पर उनका लेखन [शुक्लजी की अपनी दृष्टि मे ही] अपूर्ण है। इसलिए हमे जायसी पर पहले विचार करना चाहिए। जायसी पर उनकी भूमिका [जायसी ग्रथावली की भूमिका] पूर्ण है। उक्त ग्र थ उनके जीवनकाल मे छपा भी है और उन्होंने उक्त ग्रथ के दूसरे सस्करण को ठीक कर छपवाया है। जायसी पर कुछ कहने से पूर्व इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूँ कि शुक्लजी ने जिन तीन प्रधान कवियो पर अलग से लिखा है, उनके लिखने से पूर्व उन्होने उन कवियो की ग्रथावलियो का सम्पादन भी किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर 'तुलसी ग्रथावली' का सम्पादन हुआ है। इसके सम्पादक मण्डल मे भगवानदीन और ब्रज रत्नदास के साथ साथ आचार्य शुक्ल भी थे। ठीक इसी तरह 'सूरसागर' के सम्पादन के लिए भी उनसे कहा गया था। उसे वे पूरा नही कर पाए। फिर भी भ्रमरगीत सार का सम्पादन उनका अपना है। पूरे सूरसागर का सम्पादन बाद मे आचार्य नददुलारे वाजपेयी ने ही किया। जायसी ग्र थावली का सम्पादन उनका अपना है। ग्र थावलियो के सम्पादन से किसी समीक्षक का कवि विशेष से सीधा साक्षात्कार होता है। इस माध्यम से समीक्षक रचनाओ के बाद समीक्षा की ओर अग्रसर होता है। तुलसी ग्र थावली के सम्पादन मे शुक्लजी के साथ और लोग थे किन्तु जायसी ग्र थावली का सम्पादन उनका अपना ही है। सम्पादन परिपूर्ण है और भूमिका भी पूरी है। शुक्लजी के समस्त लेखन मे योजनाबद्ध लेखन यदि कोई परिपूर्ण रूप मे है, तो वह जायसी ग्र थावली ही है। इसके बाद हम उनके दूसरे प्रसिद्धग्रथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' को स्थान दे सकते हैं। समीक्षा की दृष्टि से तो जायसी ग्रथावली—(भूमिका) को प्रथम स्थान देना चाहिए। यहा देना चाहिए' कहते समय 'तुलसी' याद आ जाते हैं। जायसी की समीक्षा मे शोध तत्व भी है। डॉ० नगे द्र इस सम्बन्ध मे लिखते हैं —

> "क्या शुद्ध आलोचना अनुसधान नही है? यह प्रश्न दूसरे ढग से भी रखा जा सकता है क्या उत्तम आलोचना अनिवार्यत उत्तम अनुसधान नहीं है? अथवा क्या उत्तम साहित्यिक अनुसधान अपनी चरम परिणति म आलोचना से भिन्न ही रहता है? साहित्यशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते मेरे पास इसका एक ही उत्तर है और वह यह कि उत्तम आलोचना अनिवार्यत उत्तम अनुसधान भी है और उत्तम साहित्यिक अनुसधान भी है और उत्तम साहित्यिक अनुसधान अपनी चरम परिणति म आलोचना स अभिन्न हो जाता है। हिन्दी म जायसी ग्रथावली की भूमिका उत्तम आलोचना का असदिग्ध प्रमाण

> है और साहित्यिक अनुसधान का भी मैं उसे निश्चय ही अत्यत उत्कृष्ट उदाहरण मानता हू। यहा तो तथ्याधार भी अत्यत पुष्ट है इसलिए विवाद के लिए अवकाश कम है।[47]

डॉ० नगेन्द्र जायसी ग्रथावली की भूमिका को उत्तम आलोचना और उत्तम अनुसधान दोनो का आदर्श योग मानते है। प्रश्न यह है कि क्या 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक 'उत्तम आलोचना' नही है? शुक्लजी ने तो उसे विशुद्ध आलोचनात्मक रूप कहा है। हम अनुभव करते हैं कि 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक मे अनुसधान का तत्व गौण है। हम तो यह निर्णय देंगे कि समीक्षक के रूप मे तुलसीदास पर लिखी हुई उनकी पुस्तक उत्तम है। जायसी पर उनकी समीक्षा मे शोध-तत्व उभरा है। यह ठीक है कि इस शोध-तत्व के साथ साथ आलोचना का उत्तम सयोग हो जाने के कारण जायसी की समीक्षा मे तुलसी की अपेक्षा लेखन गम्भीर हो गया है। तुलसी पर लिखते समय शुक्लजी जितने सहज हैं या रहे हैं, उतने सहज वे जायसी पर लिखते समय नही रहे। प्रश्न यह है कि जायसी की ओर वे क्यो आकृष्ट हुए? दो कारण हैं। एक तो यह कि तुलसी ने जिस भाषा मे राम चरितमानस लिखा, उसी भाषा मे जायसी ने पदमावत लिखा। भाषा समान है। दूसरा यह कि जिस शैली मे (दोहा चौपाई) रामचरितमानस का सृजन हुआ है, उसी शैली मे पद्मावत का सृजन हुआ है, दोनो प्रबन्धकाव्य (तदनुसार महाकाव्य) है फिर बात यह है कि जायसी की रचना रामचरितमानस से पहले की है कवि तुलसी के प्रतिमान शुक्लजी को जायसी मे मिले। काव्यभाषा, काव्यरूप तथा शैली तीनो मे साम्य दिखलाई दिया। ऐसा प्रतिमान उन्हें किसी दूसरे कवि मे नही मिला। तुलसी के काव्य-प्रतिमानो का पारम्परिक विकास दिखलाने के लिए (तुलसीदास मे तो व उस प्रतिमान को परिपूर्ण मानते है) जायसी के अध्ययन की ओर व आकृष्ट हुए उनका यह आकर्षण अनुसधाता के रूप मे है। एक जिज्ञासु के रूप म है वस्तुत तुलसी क काव्य प्रतिमानो का अनुसधान जायसी ग्रथावली की भूमिका म है। शुक्लजी ने लिखा है—

> 'इसका (पद्मावत का) अध्ययन हिन्दी साहित्य की जानकारी के लिए कितना आवश्यक है, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इसी क ढाचे पर 34 वष पीछे गोस्वामी तुलसीदास न अपने लोकप्रसिद्ध ग्रथ रामचरितमानस की रचना की। वही अवधी भाषा और चौपाई का क्रम दोनो मे है, जो आख्यान काव्यो के लिए हिन्दी मे सभवत पहले से चला आता रहा हो। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी को छोड और किसी कवि ने नही किया है। तुलसी की भाषा के स्वरूप को पूणतया समझने के लिए जायसी की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।'[48]

तुलसी की महत्ता के उद्घाटन हेतु, जायसी का अध्ययन अनुसधाता के रूप मे हुआ है।

5 6 सूरदास

सूरदास पर शुक्लजी का लेखन अपूर्ण है। अपूर्ण, इस अर्थ मे कि शुक्लजी की अपनी दृष्टि मे यह पूर्ण नही है। सूरदास पुस्तक उनके अपने जीवनकाल म छपी भी नही। नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से 'सूरसागर' के सम्पादन का भार उनको सौपा गया था। लिखा है —

> एक बार काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने शुक्लजी के सूरसागर का सम्पादन करने का प्रस्ताव किया। उसे स्वीकार करके उन्होने काम प्रारम्भ भी कर दिया। लेकिन तीन-चार वर्ष बाद जब सभा ने जल्दी मचाई तब यह कहकर कि सूरसागर जैसे क्लिष्ट ग्रथ को वे 1940 के पहले न पूरा कर सकेंगे उन्होंने यह काम 1935 मे सभा को लौटा दिया। सभा ने रत्नाकरजी और अजमेरीजी से उसे बाद मे पूरा कराया। इसके बाद शुक्लजी ने अपने काम को प्रचुर टीका-टिप्पणी और विस्तृत भूमिका के साथ सूरसागर का सम्पादन करके स्वतत्र सस्करण मे प्रकाशित करने का निश्चय किया। तदनुसार 140 पृष्ठ भूमिका और 160 पदो की टिप्पणी छोडकर 1941 मे वे स्वर्ग सिधारे।"[49]

ये पक्तियाँ श्री चन्द्रशेखर शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'रामचन्द्र शुक्ल' मे लिखी है। भ्रमरगीतसार की भूमिका सवत् 1982 ई० की लिखी हुई है। भ्रमरगीतसार के वक्तव्य मे शुक्लजी ने लिखा है —

> "मैंने सन 1920 म भ्रमरगीत के अच्छे पद चुनकर इकट्ठे किये और उन्हे प्रकाशित करने का आयोजन किया, पर कई कारणो से उस समय पुस्तक प्रकाशित न हो सकी। छपे फार्म कई बरसो तक पडे रहे। इतने दिनो पीछे आज 'भ्रमरगीतसार' सहृदय समाज के सामने रखा जाता है।"[50]

भ्रमरगीत-सार की भूमिका आलोचनात्मक है। इस भूमिका को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी सम्पादित पुस्तक 'सूरदास' के अत म रखा है। वहाँ इसका शीर्षक आलोचना है। उक्त सम्पादित पुस्तक के अन्य निबन्ध शोधपरक, ऐतिहासिक विकास को दिखलानेवाले और कुछ सीमा तक सैद्धातिक भी है। जायसी पर शुक्लजी ने अपना कार्य पूर्ण किया, वैसे सूरदास का कार्य पूर्ण नही है। 'सूरदास' पुस्तक के द्वितीय सस्करण के अत मे परिशिष्ट के अतर्गत शुक्लजी की सूरदास पर काम करने सम्बन्धी योजना प्रकाशित है। उस योजना मे पाइटस् फार

डिस्कशन् (Points for discussion) के अंतर्गत क्रम से 10 पाइंटस दिये गये हैं। अंत में टिप्पणी भी है। इस योजना के अनुसार काम हुआ तो नहीं किन्तु सूरदास पर किन दृष्टियों से विचार करना चाहिए, यह बात स्पष्ट हो जाती है। उक्त परिशिष्ट में और भी टिप्पणियाँ हैं। इन सब को देख जाने से हम यह कह सकते हैं कि सूरदास की ओर शुक्लजी का ध्यान अनुसंधाता के रूप में गया है। काव्य के रूप में उनकी आलोचना (भ्रमरगीत सार की भूमिका) अलग है किन्तु उसको लिखने के बाद भूमिका के अंत में उन्होंने लिखा है —

> "भ्रमरगीत की भूमिका के रूप में ही यहाँ सूर के सम्बन्ध में कुछ विचार संक्षेप में प्रकट किये गए हैं। आशा है, विस्तृत आलोचना का अवसर भी कभी मिलेगा।"[61]

सूरदास के साथ ऐसा क्यों हुआ ? जायसी के साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ ? इस पर हमें विचार करना चाहिए। जायसी पर योजनानुसार श्रमपूर्ण किया, सूरदास के प्रति चाहकर भी श्रम पूर्ण नहीं हुआ और गोस्वामी तुलसीदास के लिए उन्होंने ऐसा श्रम नहीं किया न ऐसी कोई योजना बनाई।

5 7 तुलसी प्रतिमान के रूप में

यह पहले ही कहा जा चुका है कि शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि का आधार तुलसी है। जायसी तथा सूरदास पर काम करते समय शुक्लजी तुलसी को भूले नहीं हैं। तुलसी उनके मानस में है। तुलसी पर उन्होंने स्वतंत्र रूप से श्रम न किया हो किन्तु जायसी और सूरदास पर काम करते समय तुलसी का उन्होंने आवश्यकतानुसार उल्लेख किया है। सूरदास की शैली तुलसी में मिल जाती है और इसी तरह जायसी की भी। किन्तु तुलसी ने रामकथा को जितनी शैलियों में अभिव्यक्त किया है, उतनी शैलियाँ न सूरदास में मिलती हैं न जायसी में। शुक्ल जी ने अनुभव किया कि तुलसी को ठीक तरह से पहचानने के लिए जायसी और सूरदास का अध्ययन आवश्यक है। जायसी के आधार पर वे पूर्वपरम्परा को स्पष्ट करते हैं—भाषा (अवधी), शैली (दोहा चौपाई) तथा काव्यरूप (महाकाव्य—प्रबन्ध काव्य कहिए)। एक हद तक काव्य का बाह्य विधान [सृजनात्मक स्वरूप] जायसी की रचनाओं में [तुलसी के मानस से मिलाए तो] मिलता है। ठीक आंतरिक विधान पर विचार करें—भक्ति पर विचार करने की बात कहिए—तो सूरदास में ये विशेषता जायसी की अपेक्षा अधिक है। सूरदास पर विचार करते समय ध्यान भक्ति की ओर जाता है—भक्ति के स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न होता है। ठीक इसी तरह जायसी पर विचार करते समय ध्यान भाषा शैली काव्य रूप की ओर जाता है। शुक्लजी को तुलसीदास के काव्य प्रतिमान दोनों में ही

अलग-अलग स्तर पर मिलते हैं। दोनों को एक साथ [उत्तम संयोग के रूप में] वे तुलसी में ही अनुभव करते हैं।

58 इतिहास समीक्षा ग्रंथ के रूप में

समीक्षक के रूप में हमें आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—पुस्तक पर विचार करना चाहिए। कारण यह है कि भक्ति काल के तीन प्रधान कवियों को छोड़कर अन्य कवियों की समीक्षाएँ इतिहास ग्रंथ में ही मिलती हैं। गद्य की समीक्षाएँ भी इतिहास में ही हैं। उक्त ग्रंथ में इतिहास तत्त्व अधिक है या समीक्षा के तत्त्व अधिक हैं—इन सब तथ्यों पर विचार करना चाहें और उनका विवेचन तथा विश्लेषण करें तो हमारा निष्कर्ष प्रायः यह होगा कि उक्त ग्रंथ में समीक्षक के तथ्य सबसे प्रबल हैं। आज उनके इतिहास को नकारा जाता है, तो उनका कारण 'शोध पक्ष' अधिक है। इधर कई तथ्य प्रकाश में आए हैं, जिनके कारण इतिहास को अब पुराना माना जाने लगा है। सच तो यह है कि शुक्लजी ने स्वयं 'शोध' की अधिक चिन्ता भी कहाँ की है ? नागरीप्रचारिणी सभा में खोज रिपोर्टों के रूप में जो सामग्री एकत्रित हो गई थी, उसी को उन्होंने अपने इतिहास का आधार बनाया है। फिर मिश्रबन्धुओं की सामग्री का उन्होंने पूरा-पूरा उपयोग किया है। शिवसिंह सरोज से भी उन्होंने बहुत से तथ्य (विशेष रूप से रचनाओं के नाम सन-संवत् आदि) स्वीकार कर लिए हैं। शोध की दृष्टि से तथ्यों पर उन्होंने पुनर्विचार बहुत कम किया है। हम तो यह कह सकते हैं कि शोध कार्य जितना मिश्रबन्धुओं ने किया, उतना शुक्ल जी ने नहीं किया। शोध की दृष्टि में शुक्लजी मिश्रबन्धुओं से बहुत आगे नहीं हैं। किन्तु समीक्षा की दृष्टि से विचार करें, तो मिश्रबन्धुओं से वे बहुत आगे हैं। उनके इतिहास-ग्रंथ में समीक्षक का तत्त्व सबसे अधिक है। हम यों भी कह सकते हैं कि शुक्लजी के इतिहास का आधार साहित्य समीक्षा है। शुक्लजी ने 'साहित्यिक रचनाओं' की पहचान बढ़ाई है और इस पहचान का आधार 'साहित्य-समीक्षा' है। 'वीरगाथा काल', 'भक्तिकाल' तथा 'रीतिकाल' का नामकरण उनका अपना है। इस प्रकार के नामकरण में साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रधानता दी गई है। किसी विशेष कालखण्ड में उन्होंने जिन रचनाओं को साहित्य के अंतर्गत रखा, उनकी प्रवृत्तियों की पहचान कर युग विशेष की औसत प्रवृत्तियों का चयन किया और उक्त प्रवृत्तियों के आधार पर युग विशेष का नामकरण किया। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रवृत्ति की पहचान में 'साहित्य समीक्षा' प्रधान है। एक अर्थ में शुक्लजी का हिन्दी साहित्य का इतिहास—समीक्षा प्रधान ग्रंथ है। उक्त ग्रंथ का मूल्य समीक्षात्मक रूप में आज भी बाकी है। उनके इतिहास का विरोध हो सकता है, शोध के कारण उनके द्वारा स्वीकृत तथ्यों को आज नकारा जा सकता है किन्तु उनके समीक्षात्मक

लोहा आज भी सब स्वीकार करते हैं। वीरगाथाकाल की रचनाओं का काल-निर्धारण अब स्वीकृत नहीं है और शुक्लजी ने भी यह कहा कहा कि वे सब कुछ प्रामाणिक मानते हैं। अप्रामाणिक रचनाओं को लेकर ही उन्होंने विचार किया व उस कालखण्ड की रचनात्मक प्रवृत्तियों को पहचाना। यदि उक्त तथ्य (जिनको सामने रखकर शुक्लजी ने विचार किया) स्वीकृत होते हैं या मान लिए जाते हैं, तो उनके निर्णय को स्वीकार करना होगा। आपको विरोध यदि करना है, तो तथ्यों को लेकर ही विरोध कर सकते हैं। आप उनको पहले ही काट दीजिए, कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यदि एक बार आप उन्हें स्वीकार कर लेते हैं, तो आप को अन्त तक उनकी बात माननी पड़ेगी। अपनी समीक्षाओं में वे बड़े प्रबल हैं। आज भी किसी कवि पर विचार करते समय, हम यह देखना चाहते हैं कि शुक्ल जी ने कवि विशेष के सम्बन्ध में क्या कहा है? ऐसा क्यों? कारण उनकी समीक्षा है। एक समीक्षा ग्रंथ के रूप में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आज भी महत्त्वपूर्ण है।

5.9 साहित्यिक इतिहास बनाम समीक्षा

साहित्यिक इतिहास लिखना एक अर्थ में समीक्षात्मक इतिहास लिखना है। कारण यह है कि साहित्य का इतिहास लिखने के लिए कृतियों तथा कृतिकारों का चयन करना पड़ेगा। तदर्थ साहित्यिक विवेक के आधार पर कृतियों की पहचान प्रस्तुत करनी पड़ेगी। इस पहचान के बाद ही साहित्य की परम्परा दिखलाई जा सकेगी। इस नाते साहित्यिक इतिहास समीक्षा प्रधान इतिहास हो ही जाता है। और फिर समीक्षा के प्रतिमानों में इतिहासकार का प्रयोजन, साहित्यिक अभिरुचि, साहित्य सिद्धान्त आदि निहित रहते हैं। इन सब का संयोग हो तभी तो इतिहास ठीक होगा। रेन वेलेक तथा आस्टिन वारेन इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

> "ओलिवर एल्टन के विषय में जिनके छह खण्डों में लिखे गये सर्वे आफ इंग्लिश लिटरेचर में, जो पिछले कुछ वर्षों में इंग्लैंड के साहित्यिक इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है बड़े दो टूक ढंग से यह स्वीकार किया गया है कि यह 'वस्तुतः एक समीक्षा है, एक आलोचना है' न कि इतिहास।"[72]

इस रूप में तो हम भी आचार्य शुक्ल के साहित्यिक इतिहास को समीक्षात्मक इतिहास कह सकते हैं। हिन्दी साहित्य की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आचार्य शुक्ल के बाद में जो इतिहास लिखे जाने के प्रयत्न हुए उनमें 'इतिहास तत्त्व की प्रधानता देने के प्रयत्न हुए हैं—इस प्रयत्न में यह अनुभव किया गया कि यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं है अतः सहयोगी योजना बनाकर काम करना ठीक हो सकता है। किन्तु इसके कारण इतिहास में तथ्यों को बटोर कर क्रम में तो रख

दिया गया किन्तु समीक्षा का वह रूप जो आचार्य शुक्ल के इतिहास मे है, गायब हो गया। इतिहास और समीक्षा को अलगाने के प्रयत्न मे न तो इतिहास के सिद्धात की—साहित्येतिहास के सिद्धान्त की कहिए—रक्षा हो पाई और न समीक्षा ही हो सकी है। आचार्य शुक्ल का इतिहास इस तरह देखें तो अपने आपमे साहित्येतिहास का उत्तम आदर्श (Model) है।

5 10 हिन्दी समीक्षा का सत्व

31 अक्तूबर से 2 नवम्बर 1985 तक, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद मे आचार्य रामचद शुक्ल सगोष्ठी हुई। उक्त सगोष्ठी के एक सत्र का विषय 'हिंदी समीक्षा का सत्व' रहा है। इस सगोष्ठी के अध्यक्ष डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी ने शुक्लोत्तर समीक्षा के प्रतिमानो पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल की समीक्षा मे हिन्दी समीक्षा के सत्व की पहचान का प्रयत्न किया। डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं—

> "जिस चतुमुख भण्डार से दीप्त अन्तद् ष्टि का प्रथम समीक्षक हिन्दी को आचार्य शुक्ल के रूप मे मिला वैसा चतुमुख और सतुलित व्यक्तित्व पुन अब तक उदित नही हुआ। दूसरे छायावादी समीक्षा मे शुक्ल प्रतिमानो का सवत्र एकमा अकाटय खण्डन नही हो पाया है। तीसरे, स्वय आचार्य वाजपेयी उनकी 75वी वष ग्रन्थि पर वक्तव्य देते हैं—'हिन्दी अनुशीलन शुक्लजी के अभाव मे सुस्पष्ट स्वरूप ग्रहण नही कर पाया और कुल मिलाकर एक विश्रृंखल वस्तु बन गया है।'"[53]

आचार्य शुक्ल के काव्य प्रतिमान म भक्ति साहित्य की पीठिका को व्यक्त करते हुए निष्कर्षात्मक रूप मे उन्होने लिखा है—

> "भक्ति को लोकमगल परक साधनो मे वस्तुपाद और सर्वोपरि मानते हुए भी भक्ति की अवधारणा म वैष्णवाचार्यो से अलग हट जाते ह और कहते है—'धम की रसात्मक अनुभूति भक्ति है और श्रद्धा के सदेश का व्यक्त रूप धम है। यह भक्ति उनके अनुसार अन्त -करण की सत्वमय प्राकृत वत्ति है। इस प्रकार शुक्लजी का यह मौलिक प्रस्थान जिसका मेरुदण्ड जीवन मे मानवता का चरितार्थता ही सब कुछ है—कैसे विवादास्पद हो सकता है? उनका सत्व कैसे मदप्रभ हो सकता है? दूसरे उनकी समीक्षा का दूसरा पक्ष व्यावहारिक है—जिसके दो रूप हैं—एक मूल्याकनात्मक और दूसरे व्याख्यात्मक। मूल्याकनात्मक समीक्षा एकनिष्ठ होने के कारण विवादास्पद हो

सकती है परन्तु व्याख्यात्मक समीक्षा जो शब्द शक्ति और रचना की तह में निहित सजनात्मक अनुभूति के साक्षात्कार पर निर्भर है—सदा-सदा के लिए समीक्षाओं का माग निर्देश करती रहेगी।"[54]

हिन्दी समीक्षा को जो सत्व आचाय शुक्ल ने दिया, उसके कारण 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' भी अपने आप में अभूतपूर्व प्रमाणित हुआ है।



6 भक्ति आन्दोलन का सौदर्यशास्त्र

6 1 भक्ति साहित्य सौन्दयशास्त्र का आधार

आचाय रामचन्द्र शुक्ल का भक्ति-साहित्य से सम्बन्धित विवेचन, विश्लेपण तथा मूल्याकन अपने आप मे ऐतिहासिक होते हुए भी प्रासगिक है। शुक्लजी के काव्य प्रतिमानो, समीक्षा के प्रतिमाना तथा मूल्याकन के प्रतिमानों पर भक्ति-साहित्य की छाप है। शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि का आधार भक्ति-साहित्य है। और फिर शुक्लजी न भक्ति-साहित्य के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, वह भक्त बनकर नही लिखा है। जो कुछ लिखा है, वह समीक्षक के रूप मे है, इतिहासकार के रूप मे है निबन्धकार के रूप मे है व इन सब रूपो म उनका लेखन इतना प्रखर है कि हम उन्हें आचाय कह सकते है। शुक्लजी ने भक्ति-साहित्य को साहित्यिक गरिमा और दीप्ति प्रदान की। शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि मे सौदय-बोध की खोज करनी ही हो तो हमे भक्ति-साहित्य से सम्बन्धित उनके लेखन को आधार बनाना होगा। ऐसा प्रयास यहा पर कर रहा हूँ।

6 2 शील शक्ति सौन्दय

शील, शक्ति तथा सौन्दय—शुक्लजी के साहित्यिक प्रतिमान हैं। इन तीनो का योग जहाँ होगा, वहाँ लोकमगल होगा, ऐसी उनकी मान्यता है। ये प्रतिमान और यह सौन्दयबोध उन्हे भक्ति साहित्य मे उपलब्ध हुआ है। इन प्रतिमानो का आधारभूत कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं।

शील, शक्ति तथा सौन्दय—इन तीनो मे शुक्लजी न सबसे अधिक विवेचन शील का किया है। शील का सम्बन्ध भाव से है और भाव का सम्बन्ध मनोविकार से है। उलटे क्रम मे कहूँ तो मनोविकार भाव है और भाव की प्रतिष्ठा जहा है वहाँ शील है। शुक्लजी के मनोविकारो से सम्बन्धित निबन्धा म 'शील'—प्रतिमान के रूप म है। राम रूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। (अयोध्याकाण्ड, 8/1) 'बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ।' (अयोध्याकाण्ड, 1/10) 'सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल

सुभाऊ।' (अयोध्याकाण्ड 6/274) 'सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सकोची।' (अयोध्याकाण्ड 4/313)—इन पक्तियो मे राम को शील-निधान कहा गया है। इस शील का अनुभव भक्त लोग करते है। इस प्रकार का अनुभव शुक्लजी ने भक्ति साहित्य मे किया है। शील का बौद्धिक विवेचन शुक्ल जी ने किया है। इस विवेचन के अन्तगत ही शुक्लजी का सौन्दयबोध समाहित है।

6 3 शील और सौन्दय

शुक्लजी ने श्रद्धा के तीन विषय माने—शील, कला और साधन सम्पत्ति। इन तीनो मे विषय की महत्ता बतलाते हुए शुक्लजी लिखते हैं—

> "जन-साधारण के लिए शील का ही सबसे पहले ध्यान होना स्वाभाविक है, क्योकि उसका सम्बन्ध मनुष्य-मात्र की सामान्य स्थिति रक्षा से है, उसके अभाव मे समाज या उस आधार की स्थिति ही नही रह सकती जिसम कलाओ की उपयोगिता या मनोहारिता का प्रसार और साधन सम्पत्ति की प्रचुरता का विवरण और व्यवहार होता है।"[55]

शील को शुक्लजी धम के समकक्ष मान लेते है। लिखा है—

> "शील या धम मे समाज की स्थिति, प्रतिभा से रजन, और साधन सम्पत्ति से शील साधन और प्रतिभा-साधन दोनो की सभावना है।"[56]

शील को शुक्लजी ने शक्ति तथा सौदय से जोडा है। ऊपर की पक्तियो मे शील को धम के समकक्ष कहकर एक अथ म 'आचार परमो धम' कह दिया है। इसी शील को शक्ति से जोडते हुए शुक्लजी क्षात्र धम की बात कहते हैं। क्षात्र धम की महत्ता स्थापित करते हुए वे लिखते हैं—

> 'जनता के सम्पूण जीवन को स्पश करने वाला क्षात्र धम है। क्षात्र धम के इसी व्यापकत्व के कारण हमारे मुख्य अवतार राम और कृष्ण क्षत्रिय हैं। क्षात्र धम ऐकान्तिक नही है। उसका सम्बन्ध लोकरक्षा से है
>
> कममौदय की योजना क्षात्र जीवन मे जितने रूप म सभव है, उतने रूपो म और किसी जीवन मे नही। शक्ति के साथ क्षमा वभव के साथ विनय, पराक्रम के साथ रूप माधुय, तेज के साथ कोमलता, सुखभोग के साथ परदु ख कातरता, प्रताप के साथ कठिन धम पथ का अवलम्बन इत्यादि कम सौन्दय के इतने अधिक प्रकार के उत्कष योग और कहा घट सकते हैं? इसी से क्षात्र धम के सौन्दय म जो मधुर आकषण है वह अधिक व्यापक अधिक ममस्पर्शी और अधिक स्पष्ट है। मनुष्य की सम्पूण रागात्मिका वत्तियो का उत्कष पर ले जाने और विशुद्ध करने की सामथ्य उसम है।'[57]

संक्षेप में शील के साथ धर्म, शील के साथ कर्म, शील के साथ शक्ति—इन सबका सौन्दर्य जुड़ा हुआ है।

6 4 शील का मनोविज्ञान

शुक्लजी ने मनोविकारों से सम्बन्धित जो निबन्ध लिखे हैं, उनमें 'शील' को किसी मनोविकार की पहचान का आधार माना गया है। यह मैं स्पष्ट कह दूं कि ये निबन्ध मनोविज्ञान से सम्बन्ध रखते हुए भी विशुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक नहीं है। इन्हें चाहे तो 'समाज मनोविज्ञान'—के निबन्ध कह सकते हैं। ऐसा कहने का कारण यह है कि 'मनोविकार'—के सामान्य स्वरूप का विवेचन शुक्लजी ने किया है। अचेतन मन का विश्लेषण शुक्लजी ने नहीं किया है। मनोविकारों के विवेचन में व्यक्ति विशेष को ध्यान में नहीं रखा गया है। समाज के संदर्भ में व्यक्ति को ध्यान में रखकर व्यक्ति के मनोविकारों का—चेतन स्तर के मनोविकारों का—विवेचन शुक्लजी करते हैं। और ऐसा करते समय मनोविकार का भाव का स्वरूप देते हुए अपना निबन्ध लिखते हैं। यूं कहिए कि मनोविकारों से सम्बन्धित निबन्ध 'भाव दशा'—के निबन्ध हैं। मनुष्य मात्र में किसी भाव विशेष की जो सत्ता विद्यमान रहती है उसका उद्घाटन शुक्लजी करते हैं। और फिर ये भाव एक नहीं हैं। नाना प्रकार के भावों से मनुष्य मात्र का हृदय आन्दोलित रहता है। इन आन्दोलनों को पहचानने का प्रयत्न शुक्लजी ने किया है और इसे बौद्धिक रूप में ऐसे अभिव्यक्ति दी जिससे कि हम भाव विशेष के सत्स्वरूप से परिचित हो जाते हैं। किसी भाव का अन्त-साक्षात्कार हो जाए तो हम उसके सौन्दर्य से भी परिचित हो जाते हैं। जहां जहां ऐसे स्थल आए हैं, वहां-वहां शुक्लजी भावुक हो गए हैं। शुक्लजी ऐसे स्थलों को या प्रसंगों को 'मर्मस्पर्शी'—कहते हैं। ऐसा इसलिए कि इस प्रकार के प्रसंगों में मनुष्य मात्र का हृदय डूबता गहराता रहता है।

6 5 शील भक्ति के संदर्भ में

शुक्लजी ने 'भक्ति का विकास'—निबन्ध लिखा है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित पुस्तक सूरदास —पुस्तक में यह संकलित है। 78 पृष्ठों का निबन्ध है। भक्ति आन्दोलन का विवेचन इसमें है। भक्ति के दार्शनिक पक्ष का, भक्ति के महत्व का तथा भक्ति के अलग अलग रूपों का विवेचन शुक्ल जी ने विस्तार से किया है। इस निबन्ध में 'शील' की व्याख्या, भक्ति के संदर्भ में ही प्रस्तुत है। लिखा है—

> "प्रसिद्ध मनोविज्ञान वेत्ता शंड (Shand) ने अपनी पुस्तक 'शील का आधार' (Foundation of character) में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि शील का मूल स्थान भावात्मक हृदय है,

निश्चयात्मिका बुद्धि नही। व्यक्ति की व्यवहार पद्धति जब प्रकृतिस्थ हो जाती है तब शील कहलाती हे। जिस व्यवहार से दूसरे को किसी प्रकार की पीडा या कष्ट न पहुँचे, जिस व्यवहार से किसी की पीडा या कष्ट दूर हो, जिस व्यवहार से लोगो के सुख व स तोप म वद्धि हो वह उत्तम शील या सुशीलता के अ तगत माना जाता है। ऐसा व्यवहार जब तक व्यवहार करनेवाले को रुचिकर और आन दप्रद न होगा तब तक वह प्रकृतिस्थ नही कहा जा सकता। कोई बात रुचिकर या आन द-प्रद हृदय की होती है। भक्त हृदय को ही जगाता है। जगाने की पद्धति बहुत सीधी है। भक्त भगवान के पालक, रक्षक और रजक रूप को जीवन के ऐसे स्थलो के भीतर रखकर दिखाता है जहा उसका सा य फूट पडता है। भगवान की अन त शक्ति और अपार सौ दय मे उनके अन त शील की जो मधुधारा प्रवाहित होती है वह प्रकृति को मधुर कर देती है। जब तक इस मधुधारा का सचार नही होता तब तक प्रकृति की कटुता नही जाती।"[58]

गीता की सम्यक दष्टि का समथन करते हुए तथा भक्ति की महत्ता ज्ञापित करते हुए शुक्लजी लिखते हैं—

गीता मे भगवान न स्पष्ट कहा है कि किसी शुभ गुण का—चाहे वह शील हो या सौ दय, चाहे शक्ति या पराक्रम हो, चाहे ज्ञान या बुद्धि —जहा पूण उत्कप दिखाई पडे वहा मेरी विशेष कला समझना। इस विशेष कला के सम्मुख सिर झुकाना सच्ची भक्ति का एक अग है। इस सिर झुकाने से भक्ति की अन यता मे किसी प्रकार की बाधा नही पडती। यह सिर झुकाना शरणागत की दीनता नही है। यह श्रद्धा और सम्मान का भाव है जिसका सबसे उत्तम आश्रय भक्त या अहभावशू य हृदय है। [59]

भक्त की सम्यक दष्टि और भक्तिमाग की सौ दय भावना का विश्लेषण करते हुए शुक्लजी बतलाते हैं—

'भक्त की सम्यक दष्टि वही कही जा सकती है जिसके सामने अ त-र्मुख शील साधना और बहिर्मुख लोकधम पालन के बीच तथा साधा रण धम' और विशेष धम के बीच सामजस्य स्पष्ट हो। हमारे भक्तिमाग की सौ दय भावना मे लोकधम का सौ दय भी सम्मिलित है। इसी से उसके भीतर पडितो और विद्वानो की नि दा, कमवीरा और लोकरक्षको की अवना, अपनी सिद्धि और महत्ता के प्रचार की चेष्टा, उस चेष्टा म बाधक सामाजिक व्यवस्था से विद्वेष की प्रवत्ति नही पाई जाती। लोकधम के साथ ही यही सामजस्य भारतीय पद्धति

के भक्तो की एक ऐसी पहचान है जो उन्हे विदेशी पद्धति के निर्गुण भक्तो से अलग करती है। यह भेद तुलसी, सूर, नन्ददास, हितहरिवश इत्यादि भक्तो की रचनाओ को कबीर, दादू, मलूकदास इत्यादि की बानियो के साथ मिलाने स स्पष्ट हो जाता है।"[60]

ये कथन अपने आप मे इतने स्पष्ट हैं कि इनसे ज्ञात होता है कि शुक्लजी न भक्त के हृदय का दशन कर लिया है और भक्त भगवान के जिस सौन्दय का साक्षात्कार करता है, उस साक्षात्कार की स्थितिया से शुक्लजी परिचित हैं।

6 6 शुक्लजी का प्रिय चित्र दडक वनचारी राम

मैं शुक्लजी के वैयक्तिक जीवन से एक उदाहरण देना चाहूँगा। चन्द्रशेखर शुक्ल ने शुक्लजी की जीवनी लिखी है। उसमे उन्होने बतलाया है कि शुक्लजी को 'दण्डकवनचारी राम का रूप अन्य समस्त रूपो से अधिक प्रिय था। राम के उस रूप मे उनका मन रमता रहता था। उनकी दृष्टि मे पुरुषोत्तम का वह रूप था। इस सम्बन्ध मे चन्द्रशेखर शुक्ल न लिखा है—

"दण्डक के राम के सीतासमारोपितवामभाग वाला रूप और सीतान्वेषणपरायण रूप दोना मे उन्हे अलौकिक शक्ति, शील और सौन्दय मिलता था। 1933 मे अपनी कल्पना के अनुसार उनके इसी दूसरे रूप का एक सुन्दर चित्र अपने हाथ बनाकर उन्होने अपने शयनागार मे टाग रखा था। नित्य सवेरे वे इसका दशन करते थे। यह चित्र अधूरा है। इसमे कुछ परिवतन करके आयल पेंटिंग बनवाना चाहते थे। लेकिन सकल्प पूरा होने से पहले ही उनका स्वगवास हो गया। इसे उन्होने एक दाक्षिणात्य चित्रकार से रगवाया था। मूल चित्र अपने हाथ पेंसिल से खीचकर वे नित्य सवेरे उसे ठीक करके रगने के लिए द देते थे। तीसरे पहर कालिज से लौटने पर रगे हुए अश को देखते थे। इस तरह दो महीने म यह अधनिर्मित चित्र तैयार हुआ था। अब यह उनकी पुस्तको के साथ उनके ज्येष्ठ पुत्र के यहा रखा है।"[61]

इस चित्र के बनने की रोचक कथा चन्द्रशेखर शुक्ल ने आगे और विस्तार से लिखी है। पडित केशवप्रसाद मिश्र शुक्लजी के अन्तरग मित्र थे। शुक्लजी की अभिरुचिया से वे अच्छी तरह परिचित थे। कहते है 1929 मे उन्होने अपने पडोस म घूमनवाले एक अधविक्षिप्त चित्रकार से शुक्लजी का परिचय कराया। शुक्लजी कला प्रेमी थे और स्वय चित्रकार भी थे। वे चित्रकार की कला से प्रसन्न हो गये। उसे उन्होने अपने पास रख लिया। वह चित्रकार लगभग सतीस महीने शुक्लजी के पास रह भी गया। दोनो वक्त वह भोजन शुक्लजी के पास ही करता था। 1933 मे शुक्लजी ने देखा कि चित्रकार कुछ करता नही है, तो उससे काम लेना शुरू कर

दिया। इस पर उसने अपने लिए भाँग की माँग की। शुक्लजी ने कुछ दिन भाग भी दी। चार छ महीने के बाद मे दण्डकराम के चित्र की बारी आई तो चित्रकार बादाम मागने लगा। शुक्लजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नही कर सके। चित्रकार गायब हो गया। और इस तरह उक्त चित्र अधूरा रह गया। शुक्लजी ने स्वय चित्र को पूण करना चाहा किन्तु पूण नही हो सका। वे चित्र पूण करने से पहले ही चल बसे। शुक्लजी का साहचय उस चित्रकार के साथ लगभग तीन वष से कुछ अधिक रहा। इस बीच उसने कुछ चित्र बनाकर दिये भी थे। शुक्लजी ने उसे सीता हरण तथा दण्डकवनचारी राम के चित्र बनाने कहा था। वह टालता रहा। बनाता और बिगाडता। अन्तत शुक्लजी ने स्वय पेंसिल से दण्डकवनचारी राम का चित्र एक सप्ताह मे पेंसिल से तयार किया और रग देने का काम चित्रकार को दिया। पहाडो का छोडकर बाकी का रग का काम रह गया और बाद मे तो वह चला गया। यह सारा विवरण चन्द्रशेखर शुक्ल ने अपनी पुस्तक मे दिया है।[62] इस प्रसग को विस्तार देने का कारण शुक्लजी ने सौ दयबोध को स्पष्ट करना है। यह प्रसग बिहारी के निम्नलिखित दोहे का स्मरण दिलाता है—

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥ 347॥

(बिहारी रत्नाकार)

कारण यह है कि शुक्लजी स्वय चित्रकार थे। अपनी योजना के अनुसार चित्र बनाना चाहते थे। अपनी योजना चित्रकार को बतलाई। चित्रकार निर्देशन के अनुसार चित्र बनाता बिगाडता रहा और अन्त तक चित्र शुक्लजी की योजना के अनुसार नही बन सका। अन्तत चित्रकार ने शुक्लजी से कहा कि आप ही बनाइये। विवश होकर अपनी योजना मे पेंसिल से चित्र तैयार करने म भी शुक्लजी को एक सप्ताह लग गया। चित्र बन जाने पर भी रगने का काम उन्होने चित्रकार को दिया, जिस चित्रकार पूरी तरह का रग नही दे पाया। शुक्लजी नियमित अपने काय से जब घर लौटते तो पहले चित्र देखते। यह क्रम उनका बरसो चला। चित्र अधूरा ही रहा और वे चल बसे। यह सारा प्रसग बिहारी के दोहे को साथकता प्रदान कर रहा है। शुक्लजी स्वय चित्रकार थे और चित्रकार से सहायता भी ली और फिर भी चित्र बन नही सका। सौन्दय की जो छवि शुक्लजी चित्र मे अकित करना चाहते थे वह छवि अन्त तक उनके मन मे ही रह गई। उस छवि की कुछ पक्तियाँ अपनी कविता म अकित की हैं। पक्तियाँ इस प्रकार है—

जिस दडकवन मे प्रभु की कर-दट चढ ध्वनि भारी।
सुनकर कभी हुए थे कपित निशिचर अत्याचारी।

वही शक्ति वह झलक उठी झकार सहित भयहारी।
दहल उठा अन्याय उठी फिर मरती जाति हमारी ॥ [33]

शुक्लजी के प्रकृति प्रेम के सम्बन्ध मे विस्तार से लिखना नही चाहूँगा। प्रकृति के सौंदय पर शुक्लजी ने दिल खोलकर लिखा है और ऐसे स्थलो पर वे अत्यधिक भावुक भी हो गये हैं। प्रकृति को आलम्बन मानकर जिन कवियो ने प्रकृति का चित्रण किया उन कवियो की शुक्लजी ने मुक्त कठ से सराहना की है। हिन्दी की तुलना मे संस्कृत कवियो का प्रकृति चित्रण शुक्लजी को अधिक प्रिय लगा। यह सब उन्होने विस्तार से अपने निबन्ध 'काव्य मे प्राकृतिक दृश्य'—मे लिखा भी है। मेघदूत मे शुक्लजी न सौंदय देखा है। वाल्मीकि रामायण की भी व इस दृष्टि से सराहना करते हैं। शुक्लजी प्रकृति के सहज रूप के प्रेमी हैं। शुक्लजी के सौंदयबोध को जानने के लिए उनके प्रकृति प्रेम का विश्लेषण आवश्यक समझता हूँ। किन्तु प्रस्तुत लेख मे यह विवेचन विषय से बाह्य हो जाएगा। अत चलते ढग से इस प्रकृति प्रेम को मानवीय प्रकृति से युक्त कर मैं शुक्लजी के सौंदयबोध को स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँगा।

6 7 शील काव्यशास्त्रीय प्रतिमान

भक्ति साहित्य म शुक्लजी ने सौंदय का अनुभव किया है। इस अनुभव ने उन्हे साहित्यिक मूल्याकन के प्रतिमान दिये हैं। इस अनुभव से सम्बन्धित कुछ उदाहरण मैंने ऊपर दिये भी हैं। इनमे मैंने शील का सौदयबोध का प्रतिमान कहा है। शुक्लजी ने अपनी ओर से कोई शास्त्र नही लिखा। न तो उन्होन काव्य शास्त्र लिखा और न ही कोई सौंदयशास्त्र। इस पर भी उनका लेखन ऐसा है कि उन्हे आचाय मान लिया जाता है। कोई व्यक्ति सिद्धान्तो की पुस्तक लिखे या शास्त्र को शास्त्र के रूप मे लिखे तो उसके शास्त्र चिन्तन पर विवेचन सरल हो जाता है। शुक्लजी ने ऐसा लिखा ही नही। शुक्लजी अपन लखन मे अधिक व्यावहारिक हैं। उनके व्यावहारिक लेखन मे उनका शास्त्र निहित रहता है। वे अपने शास्त्र का उपयोग पहले कर लेत हैं। और तब लिखते हैं अपने शास्त्र को समझाने के लिए—यो कहिए कि सिद्धान्त चचा के लिये—निबन्ध लिखना, उन्हे सत्र मे ठीक लगा। यो तो उनकी व्यावहारिक समीक्षाओ म भी सिद्धान्त-चचा मिल जाएगी। यदि शुक्लजी का सौंदयशास्त्र लिखना पडे तो यह सौंदयशास्त्र उनके काव्यशास्त्रीय प्रतिमानो म ही मिलेगा। वस्तुत काव्यशास्त्र को सौन्दयशास्त्र स अलगाया नहीं जा सकता।

काव्यशास्त्र म शुक्लजी को 'रसवादी आचाय'—कहा गया है। साधारणीकरण स सम्बन्धित निबन्ध उनका उत्कृष्ट निबन्ध है। यह अपन आप म मौलिक और अधिक व्यावहारिक है। साधारणीकरण का प्रतिमान क्या है? निश्चित ही

आपका उत्तर शील देना पडेगा। शुक्लजी का साधारणीकरण का सिद्धात काव्य शास्त्र के प्राचीन आचार्यो पर निभर नही है। उन्होने पारिभाषिक शब्दावली प्राचीन आचार्यो से ली है किन्तु लिखा अपने ढग से और वही लिखा, जिसे वे व्यावहारिक समझते है। जब तक आश्रय आलम्बन दोनो का शील समान न हो तब तक तादात्म्य कहा हो सकता है। जहा तादात्म्य की स्थिति होगी, वही तो साधारणीकरण होगा। शीलवैचित्र्य के कारण तादात्म्य से हटकर शुक्लजी को रस की कोटियाँ बनानी पडी है। व्यावहारिक रूप मे शुक्लजी ने अनुभव किया कि काव्य मे भी सारे प्रसग तादात्म्य के नही होते और ऐसे प्रसगो के लिए उन्होने देखा कि शास्त्र मे कोई व्यवस्था ही नही है, तो उन्होने अपनी ओर स रस की कोटिया बना दी। तादात्म्य को निश्चित ही उत्तम मानते है और उनका कहना है कि तादात्म्य मे शील वैचित्र्य नही होगा। शीलवचित्र्य क कारण शुक्लजी को साधारणीकरण का विकल्प प्रस्तुत करना पडा और उसे उन्होने व्यक्ति वचित्र्यवाद कहा भी है।

68 शील मानव चरित्र का आधार

शील—जैसे शुक्लजी के काव्यशास्त्रीय प्रतिमान का आधार है, ठीक उसी तरह शुक्लजी को सौदयशास्त्री के रूप मे जानना हो तो इसी प्रतिमान पर विचार करना पडेगा। शील—के मनोविज्ञान से शुक्लजी परिचित हैं। मानवीय प्रकृति की पहचान उन्होने इसी सदभ मे की है। यह पहचान तत्वचिंतक के रूप म की है। उनके इस रूप को जानने की कोशिश नही की गई है। इस रूप मे तत्त्वचिंतक के रूप म लिखने की उनकी इच्छा भी रही हो। रसमीमासा —पुस्तक मे इस विषय की कच्ची सामग्री है। इस सामग्री का शुक्लजी व्यवस्थित रूप नही दे सके हैं। शील को आधार बनाकर उन्होने लेखन तो अन्य रूपो म अन्य अन्य पुस्तको म किया है किन्तु जहाँ तक तत्त्वचिंतन का प्रश्न है, वह इसी पुस्तक मे है। शुक्लजी न 'प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनो के गूढ सश्लेष का नाम भाव बतलाया है भाव का विवेचन साहित्य को केन्द्र मे रखकर किया गया है। इस दृष्टि से भाव की तीन दशाए बतलाई गइ हैं और वे हैं—(1) भावदशा, (2) स्थायीदशा और (3)शीलदशा। शीलदशा का समूह शुक्लजी ने बहुत बडा माना है। शीलदशा का उपयोग साहित्य म —काव्य मे कहना चाहिए—किस तरह होता है इस पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। शीलदशा का उत्कष शुक्लजी को प्रबन्ध काव्यो म दिखलाई दिया। विशेष रूप से भक्ति-साहित्य म और उसम भी रामचरितमानस मे। लिखा है—

> 'उच्च लक्ष्य रखनेवाले मनुष्य की प्रकृति का सस्कार या निर्माण की समष्टि रखनेवाले प्रबन्ध काव्य या नाटक के चरित्र चित्रण का आधार

श्रद्धा भक्ति के रूप मे सभव है। इसीलिए शील-साधना-श्रद्धा भक्ति के आधार पर ही सभव है। भक्तो के हृदय म प्रभु का वास इसी रूप मे रहता है। किसी के शील से रीझकर यदि हम मुक्त कठ से प्रशस्ति करते है या स्तुतिपाठ करते है तो इस प्रकार के प्रशस्तिगान या स्तुतिपाठ मे जिस रूप का साक्षात्कार किया जाता है और जिन रूपो और प्रसगो का उल्लेख होता है, वे सारे रूप सौंदर्यानुभव के है। विनयपत्रिका म जो प्रशस्ति गान है, वह सौदय के साक्षात्कार से युक्त है। मनुष्य आध्यात्मिक प्राणी है और अध्यात्म के रूप-गुण सौंदय से युक्त होते है। शुक्लजी सगुण के पक्षपाती है क्योकि वे मूत रूप मे अध्यात्म को अनुभव करना चाहते है।

6 10 शील और सौंदयबोध का प्रतिमान

शुक्लजी का सौंदयबोध भक्ति साहित्य पर आधारित है। अत इसी सौदय-बोध को प्रतिमान मानकर उन्होने अन्य कालो के कवियो तथा साहित्यकारो का मूल्याकन किया है। रीतिकाल के सम्बन्ध मे तथा छायावाद तथा शुक्लजी की समकालीन अन्य साहित्यिक प्रवृत्तिया के सम्बन्ध मे जो निणय शुक्लजी के द्वारा दिये गये हैं, उनमे शील ने साहित्यिक नैतिकता का बाना ग्रहण किया है। बहुत से विद्वान शुक्लजी के नीतिविधान से प्रसन्न नही ह। वे इस प्रकार के मूल्याकन को अप्रासगिक भी मानते हैं। प्रश्न है क्या शुक्लजी का नीतिविधान बौद्धिक मात्र ह ? क्या इसमे मानवीय चित्तवत्तियो की मार्मिक पहचान नही है ? क्या शील को मानवीय प्रकृति का मूल आधार नही मानना चाहिए ? ये सब प्रश्न एसे है, जिनका उत्तर इस समय मैं तार्किक रूप मे नही दे पाऊँगा। मैं तो सौदय के साक्षात्कार की बात कर रहा हूँ और इस तरह से विचार करने पर मुझे अनुभव होता है कि शुक्लजी ने अपने साहित्यिक प्रतिमान को बौद्धिक दीप्ति के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह उनकी अपनी निजी अभिरुचि का प्रश्न भी है। और अभिरुचि के बिना सौदर्य को आप कसे जानेंगे ? शुक्लजी का सौन्दयबोध केवल भक्ति साहित्य तक सीमित नही है। शुक्लजी ने रीतिसाहित्य मे भी सौन्दय देखा ह, छायावाद के सौदय से भी वे परिचित हैं। अपने इस परिचय को उन्होने अभि-व्यक्ति प्रदान की है। फिर भी यह सत्य है कि मनियत सबै राम के नाते है। भक्ति साहित्य का प्रतिमान सवत्र मौजूद रहा है। इसे आप शुक्लजी की सीमा मानो या उत्कष मानो, यह मैं आप सब पर छोडता हूँ। यो भी सौन्दयबोध की अपनी अपनी सीमाएँ होनी ही हैं। शुक्लजी का सौंदयबोध 'शील' पर आधारित है।

□□□

हो जाती है क्योंकि हम यह मान लेते हैं जो थोडे से तथ्य हमे प्राप्त है, वे सब ऐतिहासिक तथ्य हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास पर काम करनेवाले वरी ने कहा था 'प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास की पुस्तकें अन्तरालो से भरी पडी हैं।' [जे बी वरी, सलेक्टेड एसेज, 1930 ई० पृष्ठ 52] इतिहास को एक बडी आरी माना गया है जिसमे कई दात गायब हैं।"[65]

तात्पर्य यह है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास मे अतराल मिलते ही है। राजनीतिक इतिहास हो या साहित्यिक इतिहास हो—दोनो ही अतरालो से युक्त हैं। इतिहास के क्षितिज और अन्तराल स्पष्ट होगे तो इतिहास के प्रति हमारी धारणा बदलेगी।

7 2 वीरगाथाकाल हिन्दी साहित्य का क्षितिज

वीरगाथाकाल के अन्तगत आचार्य प्रवर ने कुल 12 रचनाओ पर विचार किया। मुख्य प्रवृत्ति वीरगाथा की मानकर काल का नामकरण वीरगाथा काल किया। मजेदार बात यह है कि इतिहास की मुख्य धारा मे जिन रचनाओ को रखकर नामकरण किया, वे रचनाएँ सदिग्ध है। और देखिए जिन दो कवियो को आचार्य शुक्ल ने फुटकल खाते म डाल दिया, वे दोनो ही कवि सदिग्ध नही है। सदिग्ध कवियो के आधार पर नामकरण और असदिग्ध कवियो को खाते से बाहर कर दना—*यह कसी बात है ? वीरगाथा कालीन क्षितिज के दो कवि हैं*—(1) अमीर खुसरो, और (2) विद्यापति।

7 3 अमीर खुसरो

अमीर खुसरो हिन्दी साहित्य के क्षितिज का कवि है। खडी बोली से सम्बधित उस काल का और कोई कवि हम नही मिलता। वस्तुत अमीर खुसरो जिस भाषा मे लिख रहा था, वह हिंदुई या हिन्वी भाषा थी [खडी बोली—नाम उस काल का नहा है] इस कवि के काव्य की उत्तम पहचान ही नहीं अपितु भाषा के सम्बन्ध म आचाय शुक्ल की टिप्पणी बहुत उत्तम है। अमीर खुसरो के *अन्य समकालीन उत्तर-दक्षिण के कवियो का परिचय शुक्लजी को मिला ही नहा,* यदि व दक्खिनी साहित्य स परिचित होते तो कुछ और लिखते। दक्खिनी साहित्य पर बाद म राहुल जी न काम किया और अब तो दक्खिनी साहित्य पर बहुत-सी पुस्तकें छप गई हैं। डा० वासुदेव सिंह ने 'हिन्दी साहित्य का उदभव काल' पुस्तक लिखी है। उक्त पुस्तक म खडी बोली तथा दक्खिनी का हिन्दी साहित्य स्वतन्त्र अध्याय है।[66] *यह सब होन पर भी दक्खिनी साहित्य वीरगाथा काल से जुड नही* पाया है।

7 4 विद्यापति

विद्यापति फुटकल खाते मे दूसरा नाम है। अमीर खुसरो पश्चिमी हिन्दी की सीमा है तो विद्यापति पूव की हिन्दी की सीमा है। विद्यापति की भाषा के सम्बन्ध मे लिखते हुए हिन्दी भाषा के भौगोलिक प्रसार के सम्बन्ध मे शुक्लजी ने विद्यापति की भाषा को हिन्दी के अन्तगत मानते हुए लिखा है—

> "खड़ी बोली, बागड़, ब्रज, राजस्थानी, कन्नौजी, बैसवारी, अवधी इत्यादि म रूपो और प्रत्ययो का परस्पर इतना भेद होते हुए भी सब हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती हैं। इनके बोलने वाले एक-दूसरे की बोली समझते हैं। अत जिस प्रकार हिन्दी साहित्य बीसलदेवरासो पर अपना अधिकार रखता है उसी प्रकार विद्यापति की पदावली पर भी।"67

अमीर खुसरो की भाषा पर भी इस तरह की टिप्पणी मिलती है। अमीर खुसरो की भाषा का उल्लेख आगे कबीर के प्रसग मे तथा खड़ी बोली के इतिहास के प्रसग मे अन्यत्र भी शुक्ल जी ने किया है। सूरदास की भाषा को देखकर जसे सूर पूव ब्रज भाषा सम्बन्धी अनुमान लगाने लगते हैं, ठीक वैसे तो अनुमान नही करते किन्तु इन कवियो की काव्यभाषा पर शुक्लजी का ध्यान गया है। अमीरखुसरो हो या विद्यापति—इन दोनो ही कवियो की विषय वस्तु [काव्य प्रवृत्ति] का परिचय शुक्ल जी ने दिया है। दोनों ही कवियों के उदाहरण भी शुक्लजी ने दिये हैं। विद्यापति को कृष्ण भक्त कवि नही मानते। शृगारी कवि कहना ही ठीक समझा। मथिली म विद्यापति से पहले कौन-सी परम्परा मिलती है या अमीर खुसरो से पूव खड़ी बोली की क्या परम्परा रही होगी? ये प्रश्न हमारे सामने हैं। ये दोना ही कवि भाषाविद् थे—एक से अधिक भाषाएँ जानते थे और लिखते थे। अमीर खुसरो कृत 'खालिक बारी' का सम्पादन डॉ० श्रीराम शर्मा ने किया है। उक्त सम्पादन की भूमिका मे लिखा है—

> "अमीर खुसरो अनेक भाषायें जानते थे। तुर्की उनकी पितृभाषा थी और माँ सम्भवत हिन्दी बोलती था। फारसी भी मात भाषा के समान थी। अरबी के ज्ञाता थे। सस्कृत से परिचय था। हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियो का ज्ञान था।"68

अमीर खुसरो के समय ही दक्षिण मे हिन्दवी पहुँच गई थी। दक्खिनी के साहित्य से आचाय शुक्ल परिचित नही थे। अत वे कुछ लिख नही पाए।

जसे अमीर खुसरो भाषाविद था—वसे ही विद्यापति सस्कृत, अपभ्र श, मथिली भाषाओ का ज्ञाता था।

7 5 क्षितिज का विस्तार

आचार्य शुक्ल ने क्षितिज देखा भर है। पूरा परिप्रेक्ष्य वहा नही है। इसे देख कर भी वे सकेत दे गये हैं। क्या इन सकेतो का आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने उपयोग नहीं किया ? खूब किया है। विद्यापति ही क्यो ? अपभ्रश के अन्य कवियो पर काम किया है। द्विवेदीजी ने क्षितिज का विस्तार किया है। स्वय तो किया ही किन्तु अपने चारो ओर शिष्य मण्डली खडी कर दी जो इस कार्य को आगे बढाते रहे। आदिकालीन साहित्य के क्षितिज का विस्तार और भाषाओ की पहचान बढाकर द्विवेदी जी शुक्लजी की परम्परा को आगे बढाते हैं। जो छूट गया, उसको अध्ययन का विषय बनाते हैं।

7 6 निर्गुण धारा : कबीर

भक्तिकाल के कवियो मे कबीर आचार्य शुक्ल से उपेक्षित रह गये। कबीर के उल्लेख की यहा आवश्यकता नही थी क्योंकि इतिहास की मुख्यधारा म कबीर हैं। कबीर तो भक्ति काल के आरम्भ के कवियो मे हैं। बात यह है कि शुक्लजी मानते है—

> ' निगुण मार्गी सन्त कवियो की परम्परा म थोडे ही ऐसे हुए है जिनकी रचना साहित्य के अन्तगत आ सकती है। शिक्षितो का समावेश कम होने से इनकी बानी अधिकतर साम्प्रदायिको के काम की है। इनमे मानव भावनाओ की वह विस्तृत व्यजना नही है जो साधारण जन-समाज को आकर्षित कर सके।"[69]

इसी तरह निर्गुण पथ की दार्शनिक व्यवस्था के सम्बन्ध मे भी शुक्लजी ने साफ लिख दिया है—

> "निगुण पन्थ के सन्तो के सम्बन्ध मे यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि उनम कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यथ है। उन पर द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत आदि का आराप करके वर्गीकरण करना दाशनिक पद्धति की अनभिज्ञता प्रकट करेगा।'[70]

कबीर के सम्बन्ध मे डॉ० नामवरसिंह ने 'दूसरी परम्परा की खोज'—पुस्तक म एक अध्याय लिख दिया है।[71] मैं यहाँ यह सब लिखना नही चाहता। भक्ति कालीन कवियो मे कबीर उपेक्षित रह गये, यह बात सच है। साहित्यिक अभि-रुचि की बात है।

7 7 भक्तिकाल के फुटकल कवि

भक्तिकाल के फुटकल कवियो म 22 कवियो पर आचार्य शुक्ल ने विचार

किया है। इनके नाम हैं—1 छीहल 2 लालदास 3 कृपाराम 4 महापात्र नरहरि वन्दीजन 5 नरोत्तमदास 6 आलम 7 महाराज टोडरमल 8 महाराज बीरबल 9 गग 10 मनोहर कवि 11 बलभद्र मिश्र 12 जमाल 13 केशवदास 14 होलराय 15 रहीम 16 कादिर 17 मुबारक 18 बनारसीदास 19 सेनापति 20 पुहकर 21 सुन्दर 22 लालचन्द या लक्षोदय।

ये सभी कवि भक्तिकाल के हैं। अन्तराल के कवि हैं। अमीर खुसरो और विद्यापति तो क्षितिज के कवि है। ये कवि क्षितिज के नही हैं। अन्तराल के कवि कहने का कारण यह है कि भक्ति के मुख्य प्रवाह मे बैठते नही हैं किन्तु इन कवियो की भी एक परम्परा है। केशव को ही लीजिए। वह वीरगाथा काल मे बैठाया जा सकता है, भक्तिकाल मे भी और रीतिकाल मे भी। भक्तिकाल का कवि होने पर भी आगे-पीछे की परम्पराएँ उसमे एक साथ इस तरह आबद्ध हैं कि रामचन्द्रिका लिखने पर भी राम भक्त कवियो मे उसे जगह नही मिल सकी। शुक्लजी ने उसे बाहर कर दिया। ऐसे सभी कवि जो काल की मुख्य प्रवृत्ति से जुडते नही, किन्तु फिर भी महत्वपूर्ण कवि हैं—ऐसे कवियो की विशिष्ट पहचान शुक्लजी ने द दी है। भक्तिकाल के इन फुटकल कवियो की भी एक परम्परा है जो सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश होते हुए हिन्दी मे आई है। वीरगाथा काल के क्षितिज के कवियो मे भी पूर्व परम्परा को अपभ्रश आदि के साथ पहचाना जा सकता है—विशेष रूप मे विद्यापति मे—किन्तु भक्तिकाल मे तो यह परम्परा अधिक स्पष्ट है। केशवदास तो ओरछा दरबार के कवि हैं किन्तु भक्तिकाल के इन फुटकल कवियो म अकबरी दरबार के और कवि आते हैं। अमीर खुसरो तथा विद्यापति भी दरबारी कवि थे। दरबारी कवियो की दीर्घ परम्परा पहले से चली आ रही है। रीतिकालीन दरबारी कवियो की परम्परा हिन्दी मे विद्यापति से चली आ रही है। इन सब कविया पर अलग से विचार करने की आवश्यकता है।

7 8 शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि

आचार्य शुक्ल की साहित्यिक अभिरुचि सस्कृत काव्यो के आधार पर बनी है। सस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियो को हिन्दी मे खोजने का प्रयास उनका बराबर रहा है। प्रबन्ध काव्यो मे वे अधिक रुचि लेते रहे ह। मुक्तक और फुटकल वृत्ति के कवियो मे शुक्लजी की रुचि नही रही है। हिन्दी म तुलसी ही अकेले उन्ह मिले हैं। आदिकवि वाल्मीकि म प्रकृति निरीक्षण की क्षमता की शुक्लजी बहुत सराहना करते हैं। शुक्लजी की साहित्यिक अभिरुचि जानने के लिए चिन्तामणि भाग 2 के तीनो ही निबन्ध उपयोगी हैं। 'काव्य म प्राकृतिक दृश्य' निबन्ध मे शुक्लजी लिखते हैं—

'खेद के साथ कहना पडता है कि हिन्दी की कविता का उत्थान उस

समय हुआ जब संस्कृत काव्य लक्ष्यच्युत हो चुका था। इसीसे हिन्दी की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है। केशव के पीछे तो प्रबन्ध काव्यों का बनना एक प्रकार से बन्द ही हो गया।"72

वीरगाथाकाल तथा भक्तिकाल के कवियों पर ही—फुटकल कवियों के—ऊपर विचार हो रहा है। और आचार्य शुक्ल ने इन दोनों ही कालों के कवियों में प्रबंध काव्य लिखने वाले खोजते रहे हैं। केशव तक आचार्य शुक्ल को प्रबन्ध काव्यों की परम्परा मिलती है। क्या करें? जो है उसके आधार पर ही तो निर्णय करना है। वीरगाथा काल—नामकरण के निर्णय में संदिग्ध क्यों न हो—ये तो प्रबन्ध काव्य। आचार्य शुक्ल ने खुमानरासो, बीसलदेव रासो का कथानक तक इतिहास में लिख दिया है। पृथ्वीराज रासो और अन्य काव्यों का विवेचन भी विस्तार से किया है। रासो ग्रन्थ भले ही बाद में रचे गये हों किन्तु उनका कथानक पृथ्वीराज चौहान के काल का है। रचनाओं के ऐतिहासिक काल को ही [संदिग्ध होने पर भी] वीरगाथा काल के अनुसार मान लिया गया है। फुटकल वृत्ति के कवि शुक्लजी के साहित्य विवेक में बैठे ही नहीं हैं। भक्तिकाल में तुलसीदास या राम भक्ति शाखा के बाद सूफी शाखा के कवियों की ओर ध्यान जाने का एक कारण प्रबन्धात्मक रूप में लिखना भी है। प्रबन्धात्मक लेखन के बाद शुक्ल जी के काव्य विवेक का एक आधार 'प्रकृति चित्रण' भी है। प्रबन्धात्मक लेखन न करने पर भी किसी कवि ने यदि प्रकृति चित्रण उत्तम किया है तो उसकी सराहना शुक्लजी ने की है। प्रबन्धात्मक लेखन तो किया और प्रकृति चित्रण उत्तम नहीं है तो उस सम्बन्ध में भी साफ-साफ कह दिया। अपनी साहित्यिक अभिरुचि के अनुसार शुक्लजी ने कवियों के सम्बन्ध में निर्णय दिये। अपने निर्णय को बौद्धिक आधार दिया। इतिहास में काव्य की प्रवृत्ति बतलाते समय—युग के साथ प्रवृत्ति को जोड़ते समय उन्होंने प्रबन्धात्मक लेखन को अधिक महत्त्व दिया, जिसके लिए उनके पास बौद्धिक कारण थे। किन्तु क्या प्रबन्धात्मक लेखन को आधार न बनाने वाले कवियों की एकदम उपेक्षा हुई? ऊपर से देखने पर या स्थूल रूप में उपेक्षा प्रतीत हो सकती है। किन्तु मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि मुक्तक लिखने वालों के प्रति शुक्लजी का दृष्टिकोण सहृदय समीक्षक सा रहा है। फुटकल कवियों का परिचय—इतिवृत्तात्मक नहीं है। उसमें कवियों की पहचान समीक्षा के रूप में है इतना ही है कि इतिहास की धारा से उनको अलग दिया गया है। आचार्य शुक्ल ने फुटकल कवियों में [चाहे वे क्षितिज के कवि हों या अन्तराल के कवि हों] जितने कवियों का उल्लेख किया है, व सब अपनी-अपनी जगह महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि ऐसे कवियों की संख्या में वृद्धि हुई है। आदिकाल और भक्तिकाल के कवियों की भी संख्या में निश्चित ही वृद्धि हुई है।

बहुत से नये कवि प्रकाश मे आ गए हैं किन्तु ये सब के सब आज भी फुटकल खाते के कवियो की तरह हैं। उनकी साहित्यिक पहचान पूरी नही बन पाई है। शुक्ल जी की साहित्यिक अभिरुचि बड़ी बलवान है। उनकी उस अभिरुचि का विरोध हुआ है और हो रहा है किन्तु आज भी हम अनुभव करते हैं कि जो कवि उनकी अभिरुचि मे नही बैठे, उन्हें अब तक साहित्य के इतिहास के मुख्य प्रवाह म नही जोड सके हैं। आज भी वे क्षितिज तथा अन्तराल के कवि ही हैं।

7 9 आचाय शुक्ल का चयन

साहित्यिक अभिरुचि के सम्बन्ध मे सकेत मात्र के रूप मे ही ऊपर लिखा है। इस वत्ति के कारण रचनाओ का चयन शुक्लजी ने बहुत सोच-समझकर किया है। कवियो की या रचनाओ की सूची बढ़ाने का आग्रह या प्रयत्न उनका रहा ही नही है। मिश्र-बन्धुओ की सूची —अम्बार रूप मे—उनके सामन थी। किन्तु शुक्लजी ने चयन मे अभिरुचि (साहित्य विवेक) का ध्यान रखा है। फुटकल खाते के कविया की सख्या पर उनका विशेष ध्यान नही रहा है। दो चार बढ़ जाए या घट जाए—इतिहास के प्रवाह पर कोई खास प्रभाव पडने वाला नही है, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे। फुटकल कवियो मे जो कवि आख्यानपरक लिखन वाले थे, उनकी तालिका शुक्लजी ने अलग से दी है। यह विशेष चयन और उनके सबध मे टिप्पणी बडी महत्त्वपूण है। दीपक है—सूफी रचनाओ के अतिरिक्त भक्ति-काल के अन्य आख्यान काव्य। ऐसे काव्यो को शुक्लजी ने वर्गीकृत किया है—तीन भागो मे बाँट भी दिया है—(1) ऐतिहासिक पौराणिक (2) कल्पित और (3) आत्मकथा। ऐतिहासिक पौराणिक के अन्तर्गत आठ रचनाएँ हैं—1 रामचरित मानस (तुलसी) 2 हरिचरित्र (लालदास), 3 रुक्मिणी मगल (नरहरि) 4 रुक्मिणी मगल (नददास) 5 सुदामाचरित्र (नरोत्तमदास) 6 रामचन्द्रिका (केशव) 7 वीरसिंहदेवचरित (केशव) और 8 बेलि किसन रुकमणी री (जोधपुर के राठौड राजा प्रिथीराज)। कल्पित के अन्तगत 7 रचनाओ का उल्लेख हुआ है—1 ढोला मारू रा दूहा (प्राचीन) 2 लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (दामो कवि) 3 सत्यवती कथा (ईश्वरदास) 4 माधवानन्द कामदकला (आलम) 5 रसरतन (पुहकर कवि) 6 पदमिनी चरित्र (लालचन्द) और 7 कनक मजरी (काशीराम)। आत्मकथा के अन्तगत एक ही रचना दी है और वह है अधकथानक (बनारसीदास)। यह तालिका, तालिका मात्र नही है। ऊपर और नीचे जो टिप्पणियाँ हैं, उससे लगता है कि इन रचनाओ की पहचान के बाद ही उन्हे तालिका मे जगह दी गई है। तालिका के तुरन्त बाद की टिप्पणी इस प्रकार है—

"ऊपर दी हुई सूची मे 'ढोला मारू रा दूहा' और 'बेलि किसन रुकमणी

> री' राजस्थानी भाषा मे है। ढोला मारू की प्रेमकथा राजपूताने मे बहुत प्रचलित है। दोहे बहुत पुराने हैं, यह बात उनकी भाषा मे पाई जाती है। बहुत दिनो तक मुखाग्र ही रहने के कारण बहुत से दोहे लुप्त हो गए थे, जिससे कथा की शृंखला बीच-बीच मे खण्डित हो गई थी। इसी से सवत 1618 के लगभग जन कवि कुशल लाभ ने बीच बीच मे चौपाइया रचकर जोड दी। दोहो की प्राचीनता का अनुमान इस बात से हो सकता है कि कबीर की साखियो मे ढोला मारू के बहुत से दोहे ज्यो के त्यो मिलते हैं।
>
> " 'बेलि क्रिसन रुकमिणी री' जोधपुर के राठौर राजवशीय स्वदेशाभिमानी पृथ्वीराज की रचना है जिनका महाराणा प्रताप को क्षोभ से भरा पत्र लिखना प्रसिद्ध है। रचना प्रौढ भी है और मार्मिक भी। इसमे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा है।
>
> पदमिनी चरित्र की भाषा राजस्थानी मिली है।"[73]

इन पक्तियो मे रचनाओ की पहचान है। विशेष बात यह है कि फुटकल कवियो का विवरण जहा समाप्त हुआ, वहा पर यह तालिका अलग से दी है। इस तालिका मे सूफी कवियो के प्रबन्ध काव्य नही है किन्तु अन्य सभी—भक्तिकाल की धाराओ के और फुटकल के—आख्यान काव्य है। रामचरित मानस के साथ वीरचरित और रामचन्द्रिका भी है। यहाँ पर केशव को तुलसी से अलगाया नही गया है। यह तालिका शुक्लजी के चयन को सूचित करती है। इस सूची म आए कवियो और रचनाओ का विवेचन (रामचरित मानस) और रामचद्रिका आदि) सम्बन्धित कवियो का परिचय देते हुए पहले ही कर दिया गया है। प्रबन्ध काव्य लिखने मात्र से कवि को भक्त नही माना। अन्यथा रामचद्रिका के आधार पर रामभक्त कवियो के अन्तर्गत रखा जा सकता था। कृष्णभक्त कवियो ने प्रबन्ध बहुत कम लिखे हैं और जो लिखे भी हैं, उन्हे ठीक ठीक प्रबन्ध काव्य कहना कठिन है फिर भी आचार्य शुक्ल ने केवल काव्यरूप के आधार पर अपने निर्णय नही दिए। सूरदास तथा अन्य कृष्णभक्त कवियो के सम्बन्ध मे यथोचित लिखा है। सूरदास पर लिखते समय तुलसी बराबर याद आते हैं। ऐसा तुलसी के साथ नही हुआ है। तुलसी पर लिखते समय अन्य कवियो का उल्लेख उस रूप म नही हुआ है। तुलसी मे सभी प्रकार की काव्य शैलियाँ बतलाने के लिए अन्य कवियो और उनकी शैलियो का उल्लेख शुक्ल जी ने किया है। अस्तु।

7 10 फुटकल कवियों का ऐतिहासिक मूल्याकन

हमारे सामने प्रश्न यह है कि शुक्ल जी ने जिन कवियो को फुटकल खाते में डाल दिया, उनका मूल्याकन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म कैसे करें ? क्या इस कवियो

को इतिहास की मुख्य धारा से जोडना सम्भव नही है। इतिहास मे उनकी पहचान —परम्परा मे ठीक ठीक मूल्याकन—आवश्यक है। और तो और केशवदास जैसे कवि का यह हाल है। विद्यापति, रहीम जैसे कवि भी ऐसी पहचान की प्रतीक्षा मे हैं। वीर गाथा काल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल के नामकरणो मे कुछ विवाद हुए हैं। किन्तु भक्तिकाल पर इस रूप मे विवाद नहीं है। और भक्तिकाल मे फुटकल कवियो की सख्या अधिक है। इन कवियो की ऐतिहासिक पहचान बने तो कैसे ?

7 11 इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे ई० एच० कार ने अपनी पुस्तक 'इतिहास एक प्रवचना' के अन्तगत बहुत विस्तार से लिखा है। उनका कहना है—

> "भारत के सम्बन्ध मे तो अवस्था यह है कि भारत के इतिहास पर, कोई सन्तोषजनक ग्रन्थ किसी और साहित्य मे उपलब्ध होने की बात ही क्या स्वय भारतीय साहित्य मे भी ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध नही है। हिन्दुओ के अधिकाश श्रेष्ठ विचारको की दृष्टि मे इतिहास का कोई महत्व और उपयोगिता ही नही रही है। उनके अनुसार इतिहास का कोई अस्तित्व ही नही है, एक दृष्टि से यह विचार बहुत कुछ सही है इतिहास तो एक भ्रम और छलना है (इस हद तक शायद ही कोइ पश्चिमी व्यक्ति सहमत होने को तैयार हो) और इसलिए वह एक निरथक वस्तु है। "[74]

और भी लिखा है—

> "इतिहास का जो भाव और तात्पय पश्चिमी लोग मानते हैं, उस रूप म भारतीयो न न तो अपना इतिहास वास्तव मे लिखा ही है और न उन कागजातो तथा आधारभूत सामग्री को सुरक्षित ही रखा है जिसके सहारे पश्चिमी विद्वान भारत का इतिहास प्रस्तुत कर सकें। चीन म उसका कोई इतिहास तैयार नही है जिसस पश्चिमी जिज्ञासु की तप्ति हो सके, परन्तु भारत मे उसका कोई इतिहास तैयार रूप मे उपलब्ध न होने के साथ ही इतिहास तैयार करने की प्रवृत्ति पर यदि निषेध नही तो उसे अनुत्साहित करने की भावना मौजूद है।"[75]

और भी—

> "यूरोप के सम्पर्क मे आने के पहले भारत का ऐसा इतिहास, जो पश्चिमी विद्वानो को सन्तोष दे सके, तैयार करने के लिए उपलब्ध सामग्री उसी कोटि की है जसे कि होमर की कविताए—इससे अधिक

कोई सामग्री नही मिलेगी।"[76]

ई० एच० डास की यह पुस्तक भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के बाद मे लिखी गई। इस शताब्दी के छठे दशक पर भी इसमे लिखा गया है। ऊपर की पक्तियो पर विचार करने की आवश्यकता है। साहित्य का इतिहास, राजनीतिक इतिहास से कम महत्त्व नही रखता। ऊपर की पक्तियो के सन्दर्भ मे आचार्य शुक्ल का इतिहास कितना महत्त्वपूर्ण है, यह कहने की आवश्यकता नही है। आचार्य शुक्ल के समान अन्य भाषाओ के साहित्यिक इतिहास इसी रूप मे लिखे गए होंगे क्या? यह प्रश्न है। शुक्ल जी के इतिहास की एक विशेषता यह है कि उन्होने राजनीतिक इतिहास के साथ साहित्य के इतिहास की सगति बैठाई है और ऐसे वसे नही अपितु व्यवस्थित रूप मे बैठाई है। न उन्होने कवियो को महत्त्व दिया, न राजाओ को महत्त्व दिया और न ही मठ मन्दिरो को महत्त्व दिया। सच तो यह है कि सारी सामग्री राजदरबारो या मठो-मन्दिरो से ही प्राप्त हुई है। ऐसी सामग्री प्राप्त होने का कारण बतलाते हुए ई० एच० अकार० ने ही लिखा है—

> "मध्यकालीन इतिहास पर किसी आधुनिक पुस्तक म हम पढते हैं कि मध्य युग के लोग धम से गहरे जुडे हुए थे तो मैं सोचता हूँ कि हम इस तथ्य का पता कैसे चला था कि क्या यह सच है। मध्यकालीन इतिहास के तथ्य के रूप मे हमे जो कुछ मिलता है उसका चुनाव ऐसे इतिहासकारो की पीढियो द्वारा किया गया था जिसके लिए धम का सिद्धान्त और व्यवहार एक पेशा था।"[77]

शुक्लजी का ऐसी सामग्री मिलने पर भी उन्होने साहित्य की विषय वस्तु तथा काव्यशैलियो पर ध्यान दिया। यह साधारण बात नही है। भक्ति साहित्य को प्रधान मानते हुए कम की प्रधानता दी। भक्ति के कमजोर पक्ष कृपा को शुक्ल जी ने नही अपनाया। बौद्धिक आधार पर विश्लेषण किया। ऐसे विश्लेपण मे उन्हें कुछ कवि बाहर करने पडे, ऐसा भी सिद्धान्त की रक्षा के लिए करना पडा है। आज हम फुटकल कवियो को मुख्य धारा से जोडना चाह तो इतिहास का ढाचा लड-खडा जाता है। हर कवि की परम्परा अलग बतलाना कहा ठीक है? शुक्ल जी यह स्वीकार करते हैं कि एक काल की साहित्यिक प्रवृत्ति आगे भी चल सकती है। लिखते हैं—

> "यह न समझना चाहिए कि हम्मीर के पीछे किसी वीरकाव्य की रचना ही नही हुई। समय-समय पर इस प्रकार के अन्य काव्य लिखे गये। हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक विशेषता यह भी रही कि एक विशिष्ट काल मे किसी रूप की जो काव्य-सरिता वेग से प्रवाहित हुई वह यद्यपि आगे चलकर मद गति से बहने लगी, पर 900 वर्षों

> मे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे हम उसे कभी सवथा सूखी हुई नही पाते।"[78]

विद्यापति को कृष्ण भक्त कवियो की परम्परा से जोडना चाहिए या रीतिकाल के शृगार काव्य से जोडना चाहिए? शुक्ल जी ने तो अपना निणय दे दिया। विद्यापति भक्त नही है। शृगार काव्य लिखने वाला है। बाद मे भक्तिकाल और रीतिकाल मे जो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रधान हो गइ उसके सकेत शुक्ल जी ने आदिकाल मे भी दिये हैं। निष्कष यह है कि शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को भारतीय अस्मिता प्रदान की है।

7 12 उपसहार

वीरगाथा काल तथा भक्तिकाल के फुटकल कवियों पर ऊपर विचार किया गया है। विशेष रूप से फुटकल कवियो के सम्बन्ध मे ही लिखा गया है। ऐसे कवियो की सख्या अब बढ गई है। शुक्ल जी ने जिन्हे फुटकल खाते मे रखा वे तो फिर भी महत्त्वपूण रहे हैं किन्तु जिनका उल्लेख शुक्ल जी ने किया ही नही, ऐसे नाम भी आए हैं किन्तु उन्हे अभी परम्परा मे जगह नही मिल सकी है। काल के प्रवाह मे विशिष्ट गुण धम सामान्य बनकर जीते हैं और किसी एक मे वे विशिष्ट रूप म पहचाने जाते हैं। सब की विशिष्ट पहचान होती भी नही है। वीरगाथा काल और भक्तिकाल के फुटकल कवियो मे से कुछ पर तो स्वतन्त्र पुस्तकें लिख दी गइ हैं। विद्यापति, अमीर खुसरो, केशवदास, नरोत्तमदास, रहीम जैसे कवियो की पहचान अब बढ गइ है। इस सदभ मे भी मैं यह कहना चाहूँगा कि शुक्ल जी के फुटकल खाते के कवि भी प्रधान होते जा रहे हैं और जो नही हुए हैं, वे होंगे। किन्तु ऐसे कवि जिनको शुक्ल जी देख नही पाए, उनका क्या होगा? इतिहासकार का महत्त्व इसी से ज्ञात होता है। हमे एक नये इतिहासकार की आवश्यकता है जो आज के सदभ मे उपलब्ध तथ्यो को नये सिरे से देखकर हमारी साहित्यिक पहचान बढाए। और ठीक तो तब होगा जब फुटकल खाता, फुटकल खाता न रहकर मुख्य प्रवाह क रूप म—परम्परा में ठीक स्थान पर कहना चाहिए—पहचाना जाने लगे। क्षितिज और अतराल के कवि क्षितिज और अन्तराल के न रहे।



8 रीतिकाल : ऐतिहासिक अवधारणा

8 1 रीतिकाल का विभाजन

आचाय रामचद्र शुक्ल न 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक मे रीतिकाल पर तीन प्रकरण लिखे हैं— (1) सामान्य परिचय, (2) रीति ग्रथकार कवि परिचय तथा (3) रीतिकाल के अन्य कवि। इन तीन प्रकरणो मे जो विभाजन दिखलाइ देता है वह बहुत स्थूल है। सामान्य परिचय के अन्तगत रीतिकाल की सामान्य प्रवत्तियो का ऐतिहासिक परिचय है। शीर्षक से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। अन्य दो प्रकरणो मे रीतिकाल के कवियो का परिचय है। कवियो के परिचय को शुक्लजी ने दो भागो मे विभाजित कर दिया। रीति ग्रथकार, कवियो को उन्होंने रीतिकाल के प्रधान कवि मानकर उन्हे अलग किया है। शेष कवियो को अन्य कवियो के अन्तगत रखकर प्रकरण अलग कर दिया। अन्य कवियो के अन्तगत बाकी के सभी कवि आ गए इसलिए शुक्लजी को वीरगाथाकाल तथा भक्तिकाल की तरह अलग से फुटकल खाता नही खोलना पडा। रीति ग्रन्थकार कवियो को अन्य कवियो से अलगाने के कारण शुक्लजी ने दिए हैं। प्रस्तुत मे मैं आचाय राम चद्र शुक्ल के रीतिकालीन साहित्य क प्रति दष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। साथ ही इस काल के प्रति जो उनकी ऐतिहासिक मान्यता या अव धारणा है, उसके सम्बन्ध मे भी सांकेतिक रूप म कुछ कहना चाहूँगा।

आचाय शुक्ल ने भक्तिकाल का जसे विभाजन किया, उस तरह से रीतिकाल का विभाजन नही किया। इस पर भी उन्होंने इस बात का सकेत दिया है कि ऐसा विभाजन सम्भव है। अपने वक्तव्य म शुक्लजी लिखते हैं—

> ' रीतिकाल के भीतर रीतिबद्ध रचना की जो परम्परा चली है उसका उपविभाग करने का कोई सगत आधार मुझे नही मिला। रचना के स्वरूप आदि मे कोई स्पष्ट भेद निरूपित किए बिना विभाग कैसे किया जा सकता है ? किसी काल विस्तार को लेकर यो ही पूव और उत्तर नाम देकर दो हिस्से कर डालना ऐतिहासिक विभाग नहीं कहा सकता। जब तक पूव और उत्तर के अलग-अलग लक्षण न बताए

जाएँगे तब तक इस प्रकार के विभाग का कोई अर्थ नहीं। इसी प्रकार थोड़े-थोड़े अन्तर पर होनेवाले कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम पर, अनेक काल बाँध चलने के पहले यह दिखाना आवश्यक है कि प्रत्येक काल-प्रवर्तक कवि का वह प्रभाव उसके काल में होनेवाले सब कवियों में सामान्य रूप से पाया जाता है। विभाग का कोई पुष्ट आधार होना चाहिए। रीतिबद्ध ग्रन्थों की बहुत गहरी छानबीन और सूक्ष्म पर्यालोचना करने पर आगे चलकर शायद विभाग का कोई आधार मिल जाए, पर अभी मुझे नहीं मिला है।"[79]

यह सब लिखने पर भी 'रीतिबद्ध' शब्द का प्रयोग शुक्लजी ने कर दिया है। आचार्य शुक्ल ने केशवदास को रीतिकाल में नहीं रखा। इसके लिए उन्होंने कारण भी दिया है। केशवदास न भक्तिकाल में बैठते हैं न रीतिकाल में। उन्हें भक्तिकाल के फुटकल खाते में जगह दी गई है। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

"पर केशव के 50 या 60 वर्ष पीछे हिन्दी में लक्षण-ग्रन्थों की जो परम्परा चली वह केशव के मार्ग पर नहीं चली। काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में तो वह रस की प्रधानता मानने वाले काव्य-प्रकाश और साहित्य दर्पण के पक्ष पर रही और अलंकारों के निरूपण में उसने अधिकतर चन्द्रलोक और कुवलयानन्द का अनुसरण किया। इसीसे केशव के अलंकार-लक्षण हिन्दी में प्रचलित अलंकार-लक्षणों से नहीं मिलते। केशव के अलंकारों पर कविप्रिया और रस पर रसिकप्रिया लिखी।"[80]

स्पष्ट है कि रीतिकाल के रीति ग्रंथकार कवियों में और केशवदास में शुक्लजी भेद करते हैं।

8.2 रीति-ग्रंथकार कवि

वस्तुतः रीति ग्रंथकार कवि ही रीतिकाल के प्रधान कवि हैं। इन कवियों ने रीतिबद्ध रचनाएँ की हैं। ये आचार्य और कवि दोनों ही हैं। इन्होंने जिस रीति का अनुसरण किया उसके अन्तर्गत प्रधान रूप से अलंकार तथा रस सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। संस्कृत के रीति सम्प्रदाय में ये रीति ग्रंथ अलग हैं। कवि केशवदास को रीतिकाल में न रखने का कारण यह है कि केशव ने अलंकार सम्प्रदाय के—भामह, उद्भट, दंडी आदि प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया। ऐसा रीतिकाल के रीति ग्रन्थकारों ने नहीं किया। रीति ग्रंथकार कवियों के सम्बन्ध में शुक्लजी लिखते हैं—

"हिन्दी में लक्षण की परिपाटी में पढ़नेवाले जो सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे।"[81]

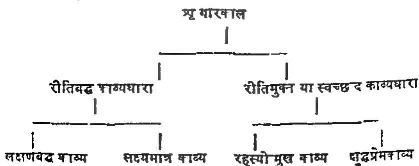
चिन्तामणि से आरम्भ कर रसिक गोविन्द तक 57 कवियो का परिचय शुक्लजी ने 'रीति-ग्रन्थकार कवि'—प्रकरण 2, मे दिया है। इन 57 कवियो मे सभी के रीति-ग्रन्थ मिलते ही हो, ऐसी बात नही है। इतनी बात अवश्य है कि इन कवियो ने ने रीतिबद्ध रचनाए की हैं। अर्थात रीति-ग्रन्थो के लक्षणो का अनुसरण करते हुए काव्य सृजन किया है। बिहारी ने कोई लक्षण ग्रन्थ नही लिखा किन्तु शुक्लजी उसे रीति ग्रथो के प्रधान कवियो मे रखते हैं। वे लिखते हैं—

> "बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थ के रूप मे अपनी 'सतसई' नही लिखी है पर 'नख सिख', 'नायिका भेद' षटऋतु के अन्तगत उनके सब शृ गारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारो ने दोहो को इस प्रकार साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसाकि कहा जा चुका है, दोहो को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणो पर अवश्य था। इसीलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियो म न रख उक्त काल के प्रतिनिधि कवियो मे ही रखा है।"[62]

शुक्लजी ने रीतिकाल का फुटकल खाता तो नही खोला किन्तु ऊपर की पक्तिया मे इस प्रकार की अवधारणा व्यक्त कर दी है। एक अथ मे, इस नाते, रीतिकाल के अन्य कवि जो अलग प्रकरण हैं—वे सब रीतिकाल के फुटकल कवि कहे जाने चाहिए। जो भी हो किसी-किसी रीति ग्रन्थकार कवि का कोई लक्षण-ग्रन्थ न भी मिला हो और यदि उसके काव्य मे रीति ग्रन्थो का अनुसरण दिखलाई देता हो तो तब भी उसे शुक्लजी ने रीति ग्रन्थकार कह दिया है।

8 3 रीतिबद्ध और रीतिमुक्त

आचाय रामचन्द शुक्ल के रीतिबद्ध शब्द के आधार पर ही बाद मे रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध शब्दो का प्रयोग आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा अन्य विद्वानो ने किया। आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र रीति को शृ गारकाल कहते हैं। हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 2 मे, शृगारकाल शीषक मे ही लिखा हुआ मिलेगा। इस शृगारकाल का उपविभाजन आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस प्रकार किया है—[63]



नामकरण मे भेद करने पर भी उसके दोनो प्रधान भेदो मे रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त नामकरणो मे 'रीति'—का प्रयोग होने के कारण रीतिकाल नामकरण उपयुक्त प्रतीत होता है। समवत इसीलिए शृगारकाल नाम अधिक प्रचलित नही हुआ और आज भी रीतिकाल नाम ही प्रचलित है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे तथा साहित्येतिहासो मे रीतिकाल नाम ही प्रचलित है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठ भाग), ग्रन्थ मे डॉ० अम्बाप्रसाद शुक्ल ने रीतिकाल के नामकरण के सम्बन्ध मे अपना निष्कर्ष देते हुए लिखा है—

> "मिश्रबन्धुओ मे अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' मे रीतिकाल के लिए 'अलकृत काल' नाम दिया है। वीरगाथाकाल से लेकर गद्यकाल तक की रचनाएँ बहुत कुछ अलकारो से सुसज्जित रही हैं। इस आधार पर प्रत्येक काल 'अलकार काल' कहलाने का अधिकारी हो सकता है। केशव को छोडकर अन्य बहुत से कवि ऐसे हैं जो 'रस' और 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा मानकर बडी सुन्दर काव्य रचना कर गये हैं। रस की दृष्टि से मतिराम और ध्वनि की दृष्टि से बिहारी का नाम लिया जा सकता है। अत 'अलकृत काल' नाम हमारे विवेच्य काल (रीतिकाल) का पूरा प्रतिनिधित्व नही करता"[84]

और पीछे हम देख चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो केशव को भी रीतिकाल में नहीं रखा है। वस्तुत केशव तो सस्कृत के अलकार सम्प्रदाय के अधिक निकट पडते हैं। अलकृत-काल नाम रखा जाना पडता तो केशव को पहले स्थान देना पडता और शुक्लजी ने केशव को रीतिकाल से बाहर रखा है।

'शृगार काल'—के सम्बन्ध मे डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन आगे लिखते हैं—

> "शृगार की प्रमुखता असदिग्ध है एव वह स्वतन्त्र नही है, सवत्र रीतिबद्ध ही है। इस काल के समस्त कवियो को हम तीन वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं—(1) रीतिग्रन्थकार कवि, (2) रीतिबद्ध, (3) रीतिमुक्त कवि। हम देखते हैं कि रीति का प्रभाव प्रत्येक वग के कवियो पर है। रीति शब्द के दो ही अथ हैं। एक विशिष्ट पदरचना और दूसरा लक्षणग्रन्थ। रीतिग्रन्थकार कवियो और रीतिबद्ध कवियो की कविताएँ तो किसी-न किसी प्रकार लक्षबद्ध थी ही। रही रीतिमुक्त कवियो की बात, उनम भी एक प्रकार की कवित्वपूण पदरचना का वशिष्ट्य पाया जाता है। अत हिन्दी के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल के नाम से अभिहित करना ही अधिक उपयुक्त है, अलकृत काल और शृगारकाल नाम उसकी आन्तरिक प्रवृत्ति का ठीक से प्रतिनिधित्व नही करते।"[85]

तात्पर्य यह कि आज भी आचार्य शुक्ल का नामकरण ही प्रचलित है।

आचार्य शुक्ल रीतिकालीन सामग्री के लिए मिश्रबन्धुओं पर निर्भर रहे हैं। वे इस काल के साहित्यिक अध्ययन में विशेष रुचि नहीं लेते। रीतिकालीन साहित्य के सम्बन्ध में शुक्लजी ने जो कुछ लिखा है, वह केवल उनके इतिहास वाली पुस्तक में ही है। वे लिखते हैं—

> "इस काल के (रीतिकाल के) कवियों के परिचयात्मक वृत्तों की छानबीन में मैं अधिक नहीं प्रवृत्त हुआ हूँ क्योंकि मेरा उद्देश्य अपने साहित्य के इतिहास का एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करना था, न कि कवि कीर्तन करना। अतः कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः मिश्रबन्धु विनोद से ही लिए हैं। कहीं कहीं कुछ कवियों के विवरणों में परिवर्द्धन और परिष्कार भी किया है, जैसे ठाकुर, दीनदयालगिरि, रामसहाय और रसिक गोविंद के विवरणों में। यदि कुछ कवियों के नाम छूट गए या किसी कवि की किसी मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नहीं हुआ तो इससे मेरी कोई बड़ी उद्देश्य हानि नहीं हुई। इस काल के भीतर मैंने जितने कवि लिए हैं या जितने ग्रन्थों के नाम दिए हैं उतने ही जरूरत से ज्यादा मालूम हो रहे हैं।"[88]

और फिर शुक्लजी ने रीतिग्रन्थकार कवियों में 57 कवि तथा रीतिकाल के अन्य कवियों में 46 कवियों का परिचय दिया है।

8 4 सामान्य परिचय

रीतिकाल का समय शुक्लजी ने 1700 1900 संवत माना है। तदनुसार यह काल 1643 ई० से 1843 ई० के बीच का है। 1643 ई० शाहजहाँ बादशाह का शासनकाल है। तब से 1843 ई० तक मुगलों का ही शासन चलता रहा है। समस्त मुगलकाल में मुगल बादशाह केन्द्र में रहे हैं। रीतिग्रन्थों की परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से मानी है। रीतिग्रन्थों के रचयिता आचार्य और कवि दोनों थे। शुक्लजी ने संस्कृत के आचार्य तथा रीतिकालीन हिन्दी आचार्य कवियों में भेद किया है। संस्कृत में काव्यशास्त्र के जो आचार्य हुए वे हिन्दी के आचार्यों से भिन्न हैं। केशव ने संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण किया। अपने समय के आचार्यों का नहीं। किन्तु चिंतामणि और बाद के कवियों ने संस्कृत के परवर्ती आचार्यों को आधार माना—साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश आदि का और उनमें भी चन्द्रालोक और कुवलयानन्द उनके विशेष आधार ग्रन्थ रहे हैं। इस नाते शुक्लजी रीतिकालीन आचार्यों को आचार्यों की कोटि में नहीं रखते। वे उन्हें कविरूप में स्वीकार करते हैं। आचार्यत्व की दृष्टि से कुछ उपलब्धियों का उल्लेख शुक्लजी ने किया है किन्तु वे इस बात को अधिक महत्त्व नहीं देते। रीतिकालीन आचार्य

कवियो के कविरूप की वे मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं। लिखते हैं—

> "इन रीति ग्रथो के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यागो का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अत उनके द्वारा बडा भारी कार्य यह हुआ कि रसो (विशेषत शृ गाररस) और अलकारो के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण म प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण सस्कृत के सारे लक्षण-ग्रन्थो से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक सख्या न होगी। अलकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर अधिक झुकाव रहा। इससे शृगाररस के अ तगत बहुत सु दर मुक्तक रचना हि दी मे हुई है।"[87]

इस तरह से रीतिकालीन कवियो की विशेषताए बतलाते हुए भी उ होने यह भी स्वीकार किया कि आचार्यत्व के ब धन के कारण कवियो को सकुचित क्षत्र मे सिमटकर रह जाना पडा है। लिखा है—

> "वह (कवियो की दृष्टि) एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र सकुचित हो गया। वाग्धारा बधी हुई नालियो म प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए। दूसरी बात यह हुई कि कवियो की व्यक्ति विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया।"[88]

8 5 काव्य भाषा

रीतिकालीन कवियो की काव्य भाषा ब्रज थी। इस काव्य भाषा के विस्तार का—साहित्यिक भाषा के रूप मे विस्तार का—उल्लेख शुक्लजी ने किया है। दासजी की पक्तियाँ उद्ध त करते हुए ब्रजभाषा के मिश्रित और विकसित रूप को स्वीकार किया है। अनेक कवियो ने ब्रजभाषा को अपनाया और वह काव्यभाषा के रूप म स्वीकृत रही है। फारसी भाषा के प्रभाव का उल्लेख शुक्लजी ने विशेष रूप से दरबारी पद्धति के—मुगल दरबार कहना चाहिए—कारण किया है। इसी सदभ मे आश्रयदाता की अभिरुचियो का उल्लेख भी वे कर देते हैं। शुक्लजी ने रीतिकाल के सम्ब ध मे जो भी लिखा है वह अपनी जगह आज भी ठीक है। उसको स्वीकार करते हुए जो नही लिखा, उसको लेकर उन पर दोषारोपण करते हैं। रीतिकाल की जो सीमा—सवत 1900 या 1843 ई० शुक्लजी ने मानी उससे भी विद्वान उनसे नाराज हैं। उन पर यह दोषारोपण है कि उनके कारण ब्रजभाषा को समय से पूव अपने क्षेत्र मे सीमित मान लिया गया। ब्रजभाषा और रीतिकाल दोनों के प्रति ही कहना चाहिए, शुक्लजी का रवैया डा० महेन्द्रप्रतापसिंह ने ठीक नही माना। वे लिखते है—

> "बीसवीं शताब्दी के प्रथम चार-पांच दशकों तक ब्रजभाषा का रचना प्रवाह अटूट बना रहा है, किन्तु हिन्दी साहित्य के आलोचकों और इतिहास लेखकों, खासकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रतिशोधात्मक (यह शब्द पं० श्री नारायणजी का है) दृष्टियों ने इस युग के कृतित्व का तिरस्कृत करने में कोई कसर नहीं रखी है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य ज्ञान के अहंकार ने प्रतिशोध की अग्नि में घी का काम किया है। शुक्लजी ने ब्रजभाषा के जीवन-काल में ही अपने इतिहास में सन् 1844 ई० के आसपास रीतिकाल अथवा ब्रजभाषा काव्य के दिवंगत होने की पोस्ट मार्टम रपट प्रकाशित करके रचनाकारों और काव्य प्रेमियों को निरस्त कर दिया था।[89]

डा० महेन्द्रपालसिंह केवल ब्रजभाषा की ही बात नहीं करते अपितु रीतिकाल की कविता को शृंगारी काव्य मानकर उसका अवमूल्यन करने का भी विरोध करते लिखते हैं—

> 'शुक्लजी के अनैतिहासिक बयानों को ब्रह्म वाक्य मानने वालों की ऐसी 'कूल' बुद्धि हुई कि हिन्दी का इतिहास शुक्लजी की मान्यताओं के चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह अपना सिर पीट रहा है। अंग्रेजी भाषा के संस्कारों से प्रभावित आलोचना दृष्टि ही ब्रजभाषा एवं रीति-कालीन साहित्य की सबसे बड़ी शत्रु साबित हुई। यदि महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में इसे पत्र-पत्रिकाओं से बहिष्कृत करने की पहल की गई थी, तो शुक्लजी ने अध्यापक आलोचकों को यह बताकर ब्रेनवाश कर दिया कि यह काव्य शृंगारिकता, विलासिता एवं ऐन्द्रियता आदि से संयुक्त होने के कारण अच्छे संस्कारों के अनुकूल नहीं है। फलतः उसके प्रति उदासीनता एवं बेरुखी की ऐसी संक्रामक बीमारी लगी कि उसका जीवन भी दूभर हो गया।"[90]

आचार्य शुक्ल पर इस तरह के दोषारोपण किए गए हैं। इनका उत्तर देना आवश्यक है। प्रथमतः भाषा के संबंध में विचार करें। शुक्लजी को जितनी सामग्री मिली, उसके आधार पर उन्होंने इतिहास लिखा है। रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रधान काव्य भाषा थी, इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। इस समय खड़ी बोली के विविध रूप प्रचलित रहे हैं किन्तु उससे सम्बन्धित सामग्री शुक्लजी के दखल में नहीं आई। उदाहरण के लिए दक्षिण में दक्खिनी में साहित्य लिखा जा रहा था। दक्खिनी साहित्य का उत्कर्षकाल रीतिकाल ही है। दक्खिनी की रचनाएँ शुक्लजी को प्राप्त होतीं और हिन्दी के भौगोलिक विस्तार से सम्बन्धित सामग्री उन्हें मिलती तो संभवतः वे और प्रकार से लिखते। इसी तरह यदि रीतिकालीन

साहित्य पर विचार करें तो प्रथम बात तो यह ध्यान मे रखनी चाहिए कि शुक्लजी इतिहास और समीक्षा एक साथ लिख रहे हैं। इतिहास के साथ न्याय करें तो समीक्षा गलत हो जाती है और समीक्षा के साथ न्याय करें तो इतिहास गलत हो जाता है। लगता है बहुत से विद्वान शुक्लजी की समीक्षा से तो सहमत हैं किन्तु इतिहास से सहमत नही हैं। ऐसी बात रीतिकाल के सम्बन्ध मे अधिक हो गई है।

8 6 केशव और भूषण

हम भूषण कवि पर विचार करें। इसी तरह केशवदास पर विचार करें तो इतिहास तथा समीक्षा के अन्तर को स्पष्ट करना आसान हो जाएगा। केशवदास को शुक्लजी ने भक्तिकाल में फुटकल कवियो मे रखा। शुक्लजी एक बार जो सिद्धान्त बना लेते हैं, फिर वे उसका पालन करने का प्रयत्न करते हैं। केशवदास सवत् 1700 से 1900 सवत के बीच आते ही नही फिर उन्हे रीतिकाल मे कैसे रखें ? काल की दृष्टि से गलत हो जाएगा। केशव का काल तो भक्ति काल मे बैठता है किन्तु वे भक्त भी नही है। ऐसी स्थिति मे शुक्लजी ने यही ठीक समझा कि काल की प्रधान प्रवृत्ति मे—इतिहास में प्रवृत्ति का निदशन करना आवश्यक है—यदि कवि न बैठे और यदि वह कवि उसी काल का कवि है, तो उसे अलगाने के लिए फुटकल खाता खोल दें। हम देखते हैं कि शुक्लजी के बाद मे जो इतिहास लिखे गये हैं, वे फुटकल खाता खोलना पसन्द नही करते। फुटकल खाता खोलने का यह अर्थ नही कि उसके अन्तगत जो कवि आता है, वह कवि महत्वपूण नही। इतिहास की प्रधान प्रवृत्ति म नही बैठा इसलिए उसे फुटकल खाते मे रखा गया। क्या शुक्लजी ने विद्यापति जैसे कवि को फुटकल खाते मे नही रखा ? शृगार के साथ वीर का मेल विद्यापति म नही था। वीरगाथात्मक प्रवत्ति को शुक्लजी ने प्रधान माना। बस विद्यापति जैसे कवियो के लिए अलग खाता खोलना पडा। अब इसमे केशवदास भी आ गये। वे रीतिकाल के कालखण्ड म नही बैठे। यह तो एक बात हुई। दूसरी बात वह कि रीतिकाल के रीतिग्रथकारो से केशव का भेद शुक्ल जी ने बतला दिया जिसको मैं पुन दोहराना नही चाहता। इसी तरह भूषण पर विचार करें। भूषण को शुक्ल जी ने रीतिग्रथकार कवियो के अन्तगत स्थान दिया। वे क्या करते ? भूषण ने शिवराज भूषण अलकार निरूपण ग्रथ लिखा था। वह लक्षणग्रथ ही था। रीतिग्रथकार कवियो म जगह देना आवश्यक था। इतिहास मे प्रवत्ति के अनुसार विवेचन करना था उसमे उसे ठीक जगह मिल गई। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या भूषण को हम रीतिग्रथकार के रूप मे जानते हैं ? नही। कवि भूषण की साहित्यिक प्रवृत्ति अलग है और उसका साहित्य के इतिहास म विशेष उल्लेख होना चाहिए था। शुक्लजी ने इतिहास की रक्षा की। इतिहास के अपने सिद्धान्त की रक्षा की और उस दष्टि से वे आज भी ठीक हैं। यह तो इतिहास की

बात हुई। समीक्षा की दृष्टि से देखें तो उन्होंने अपनी समझ से छोटे से छोटे कवि के प्रति न्याय किया है। क्या शुक्लजी ने केशव के सम्बन्ध में या भूषण के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसको समीक्षक स्वीकार करते हैं या नहीं ? भूषण की शुक्ल जी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। उसकी काव्य-प्रवृत्ति के अलगाव का उल्लेख भी उन्होंने किया है। समीक्षा के रूप में शुक्लजी भूषण के प्रति उचित न्याय करते हैं। किन्तु इतिहास को क्या करें ? भूषण अन्ततः रीतिग्रंथकार कवि ही ठहरे। इसलिए लिखने वाले को अपने सिद्धान्त के प्रति दृढ़ रहना पड़ता है और इसमें वह कुछ निर्मम हो भी जाता है।

हम अनुभव करते हैं कि शुक्लजी की समीक्षाएँ—कवियों के प्रति मूल्यांकन के रूप में लिखी गई टिप्पणियाँ—मूल्यांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी गई है। उनके मूल्यांकन की धाक आज तक कायम है। उनका विरोध करने वाले उनकी इस शक्ति से आज भी आक्रान्त हैं। साहित्येतिहास में समीक्षा को इतिहास से प्रबल रूप देना साधारण बात नहीं है। इसके लिए दृढ़ व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। विद्वान यदि शुक्लजी के साहित्येतिहास को समीक्षात्मक इतिहास कहना चाहें तो कह लें। इसमें शुक्लजी का क्या बिगड़नेवाला है ?

8 7 काव्य प्रवृत्ति

शुक्लजी ने रीतिकाल की प्रधान प्रवृत्ति 'शृंगाररस' को स्वीकार किया। अन्य प्रवृत्तियों को उन्होंने गौण मानकर अलगा दिया। फिर इस प्रवृत्ति के साथ साथ रीतिग्रंथकार को अलग किया। कविगण लिखते तो रीतिग्रंथ रहे किन्तु उनकी काव्यप्रवृत्ति शृंगार की रही है। इसमें कहीं भी गलत नहीं है। शुक्लजी ने इतिहास में इसी सिद्धान्त का पालन किया है और इसमें जो कविगण बैठे उसको आधार बनाकर शुक्लजी ने 'रीतिग्रंथकार'—प्रकरण अलग कर दिया। क्या इस प्रकरण में शृंगार के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्ति के कवि नहीं आए ? आए हैं किन्तु वे रीतिग्रंथकार के अन्तर्गत पैठ जाते हैं। इतिहास की दृष्टि से वे सब को एक पेटे में रख देते हैं और समीक्षा लिखते समय उसको अलगा देते हैं। बिहारी के संबंध में भी ऐसा किया गया है। बिहारी ने तो रीतिग्रंथ लिखा नहीं था फिर ऐसा क्यों किया गया। उत्तर शुक्लजी ने दे दिया है। ऊपर मैंने इस सम्बन्ध में लिख भी दिया है।

इतिहास की दृष्टि से प्रधान प्रवृत्ति 'रीति-ग्रंथ' लिखने की ओर काव्य के विषय में दृष्टि प्रधान प्रवृत्ति 'शृंगार रस' की। शुक्लजी का यह निर्णय आज भी स्वीकृत है। 'शृंगार रस'—के रसराजत्व से शुक्लजी परिचित नहीं हैं, ऐसी बात नहीं। वे उसका उसकी ठीक जगह देते भी हैं। चिन्तामणि भाग 1, के 'लोभ और प्रीति' निबन्ध का अन्तिम अनुच्छेद देखें तो ज्ञात हो जाएगा कि शृंगाररस क्यों

रसराज है ?—शृंगाररस के महत्त्व को जानते हुए भी शुक्लजी ने रीतिकालीन साहित्य के प्रति जो निर्णय दिया उससे शृंगाररस मे रुचि रखने वालो को तकलीफ हुई है। शृंगाररस की प्रवृत्ति वीरगाथा काल म भी रही है और भक्तिकाल में भी रही है। क्या चदवरदाई के काव्य मे शृंगाररस नही है ? है। तुलसी या सूरदास के काव्य मे शृंगार रस नही है ? है। इस शृंगार का विवेचन क्या शुक्लजी करते नही ? करते हैं। किन्तु वीरगाथाकाल के कवि शृंगार से अधिक वीर वृत्ति को महत्व देते थे और इसी तरह भक्तिकाल के कवि शृंगार से अधिक भक्ति को महत्व देते रहे। इसलिए उनका नामकरण अलग है। किन्तु रीतिकाल के कविया ने अपने को शृंगार रस तक सीमित कर लिया—इसे शुक्लजी व्यक्तिगत रूप मे ठीक नही मानते। अपनी साहित्यिक अभिरुचि का प्रश्न है। साहित्यिक प्रयोजन के सम्बन्ध म उनकी अवधारणा की बात है। उनको यह ठीक नही लगा कि साहित्य का क्षेत्र इस तरह एकदम सकुचित हो जाए। जीवन के विविध रूपो का दर्शन रीतिकाल मे उन्हे दिखलाई नही दिया। यह सब व अलग से बतलाकर लिखते हैं। ऐसा लिखने से पूर्व उन्होने शृंगार की बारीकियो का विवेचन हिन्दी म इस काल मे जिस चरम रूप को पहुँचा, उसकी महत्ता स्वीकार की है। रीतिकालीन कवियो के सौन्दर्यबोध से शुक्लजी परिचित हैं। उन्होने प्राय प्रत्येक कवि की कविताओ के नमूनो के रूप म उदाहरण दिये है। इस तरह उदाहरण देने मे उनके साहित्यिक सस्कार और उनकी अभिरुचि का बोध होता है। सच तो यह है कि साहित्येतिहास म उदाहरण देन के लिए जगह ही कहा रहती है। आप कितने उदाहरण देंगे ? किन्तु शुक्लजी ने तो सब जगह उदाहरण दिये हैं। कविताओ मे भी दिये और गद्य म भी दिये। इस तरह शृंगार के उदाहरण रीतिग्रथकार कवियो के हों या रीति मुक्त कविया के हो—वे उदाहरण ऐसे हैं जो रीतिकालीन साहित्यिक पहचान को बढाने वाले हैं। वे प्रवृत्ति को उसके मूल स्वरूप मे स्वीकार करते हैं और उसका ठीक रूप बतलाकर इतिहास मे उसका मूल्याकन अलग से कर देते हैं। इस दृष्टि से देखने पर हम यह कैसे कहे कि शृंगाररस के प्रति उन्होंने अन्याय किया। बिहारी हो या घनानन्द—उनके शृंगारी काव्य का मूल्याकन बारीकी से—उनके साहित्यिक गुणो के सदर्भ मे कहना चाहिए—किया गया है। सक्षेप मे शृंगार के सम्बन्ध म उनकी ऐतिहासिक टिप्पणी से 'रसिकवृन्द कितने नाराज हो गये। उनकी ऐतिहासिक टिप्पणी फिर दोहरा देता हू—

> 'रीति ग्रथो की इस परम्परा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास मे कुछ बाधा भी पडी। प्रकृति की अनेकरूपता जीवन की भिन्न-भिन्न चित्य बातो तथा जगत के नाना रहस्यो की ओर कवियो की दृष्टि नही जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिचित सी हो गई। उसका क्षेत्र सकुचित हो गया। वाग्धारा बधी हुइ नालिया मे प्रवाहित होन लगी

> जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए। दूसरी बात यह हुई कि कवियो की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर भी बहुत ही कम रह गया।"[91]

आचार्य शुक्ल की इस ऐतिहासिक टिप्पणी ने गजब ढा दिया। किन्तु ध्यान से देखें और हिन्दी साहित्य के इतिहास मे—इस काल के इतिहास पर तुलनात्मक विचार करें तो क्या जो कुछ कहा गया, वह गलत है क्या? और फिर एक ओर शुक्लजी ने ऐसी पक्तियाँ लिखी वही दूसरी ओर शृगार रस की उपलब्धि मे भी मूल्याकन वाली पक्तियाँ लिख डाली है। मूल्याकन वाली पक्तियो म लिखा—

> "उनके द्वारा [रीति कवियो द्वारा] बडा भारी काय यह हुआ कि रसो [विशेषत शृगार रस] और अलकारो के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यत प्रचुर परिणाम मे प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और उत्तम उदाहरण सस्कृत से सारे लक्षण ग्रथो से चुनकर इकटठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक सख्या न होगी।"[92]

शुक्लजी ने वस्तु स्थिति स्पष्ट कर दी है। अब आप पर निभर है कि रीतिकालीन साहित्य का मूल्याकन आप किस दृष्टि से करना चाहते हैं। शुक्लजी समीक्षा तो उत्तम कोटि की करते हैं किन्तु वे यह नही भूलते कि इतिहास ग्रथ लिख रहे हैं। इतिहास मे उन्होने कवियो को जिस किसी खाते म डाल दिया, उससे विद्वान उनसे नाराज हो गये। इतिहास के प्रति बरती गई निममता ने उनके मूल्याकन को अच्छादित कर दिया।

8 8 रीतिकाल का उपविभाजन

और ऊपर जो कुछ रीतिग्रथकार कवियो के प्रति लिखा गया, वह तब है जब कि शुक्लजी साफ लिख देते हैं कि 'इसकाल के कवियो के परिचयात्मक वृत्त की छान बीन म मैं अधिक प्रवृत्त नही हुआ हू।'[93] उन्होन जितनी सामग्री का उपयोग चलते ढग से और शीघ्रता मे लिखने के नाते किया, वह भी उन्हे आवश्यकता से अधिक प्रतीत हुआ है। वे रीतिकाल के उपविभाजन मे प्रवृत्त नही हुए किन्तु इस उपविभाजन के प्रति पारिभाषिक शब्द उनके ही दिए हुए हैं। रीतिकाल से सम्बन्धित स्वय शुक्लजी के इतिहास म और बाद म जो शब्दावली है उसका स्पष्टीकरण अलग से कर रहा हू—

रीति-ग्रथकार रीति-ग्रथकार कवि वे हैं, जिन्होने रस निरूपण, अलकार निरूपण से या काव्य के लक्षणो के निरूपण के सम्बन्ध म ग्रथ लिखे हैं। वे सभी कवि आचायत्व की ओर उन्मुख रहे हैं। शुक्लजी न इस प्रकार के कवियो का स्वतत्र प्रकरण अपा

इतिहास मे लिखा है।

रीतिबद्ध रीतिग्रथो का अनुसरण करते हुए उदाहरणो के रूप मे जो काव्य सृजन हुआ है वह रीति की परम्परा के प्रति प्रतिबद्ध होकर लिखे जाने के कारण रीतिबद्ध है। यो कहना चाहिए कि रीति ग्रथकारो ने रीतिबद्ध रचनाएँ लिखी है।

आचार्य शुक्ल ने अपने 'रीति ग्रथकार कवि' प्रकरण मे रीतिग्रथकार और रीतिबद्ध दोनो प्रकार के कवियो को रखा है। शुक्लजी के अनुसार चिंतामणि रीतिग्रथकार हैं किन्तु बिहारी रीतिग्रथकार नही है। बिहारी रीति ग्रथकार न होते हुए भी रीतिबद्ध है। शुक्लजी के रीतिग्रथकार मे रीतिबद्ध कवि भी आ गये हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि शुक्लजी जिसे रीति ग्रथकार कहते हैं बाद मे अन्य इतिहासकारो ने रीतिग्रथकारो को ही रीतिबद्ध कहना ठीक समझा है। और यदि रीति ग्रथकार और रीतिबद्ध को समान अर्थी मान ले तो फिर बिहारी को रीतिबद्ध कवियो से अलगाना आवश्यक हुआ। बिहारी को रीतिमुक्त तो कहा नही जा सकता था। अत फिर बिहारी को रीतिसिद्ध कहा गया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का अतीत दूसरा भाग शृगारकाल' मे बिहारी को रीति-सिद्ध कवि कहते हैं। आप लिखते है—

> 'शृगारकाल मे रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियो से उन कवियो को भी पृथक करना होगा जो रीतिसिद्ध है। जिन्होने रीति की सारी परम्परा सिद्ध कर ली थी अर्थात रचनाएँ जिन्होने रीति की बधी परिपाटी के अनुकूल ही की हैं पर लक्षण ग्रथ प्रस्तुत न करके स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाएँ रची हैं। ये वस्तुत मध्यवर्गी थे। रीति से बधे भी थे और उससे कुछ स्वच्छन्द होकर भी चलते थे। यद्यपि जो लोग रीतिग्रथ लिखते थे वे भी अपनी उक्तियो के प्रदर्शनार्थ ही रीति का सहारा लेते थे तथापि वे लक्षण से बाहर नही जा सकते थे। जो कुछ कहना होता था उसीके भीतर कहते थे। पर जो रीति से केवल सहारे का काम लेते थे वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी चाहते थे।'' 4

आगे और भी विस्तार से लिखते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रताप मिश्र बिहारी को रीतिबद्ध न कहकर रीतिसिद्ध कहते हैं। रीतिबद्ध शब्द का प्रयोग आचार्य शुक्ल ने किया था।

आचार्य शुक्ल ने 'रीतिमुक्त'—शब्द का प्रयोग नही किया किन्तु 'रीतिबद्ध' का तो किया है। और यह स्पष्ट है कि रीतिबद्ध के आधार पर ही रीतिमुक्त का प्रयोग हुआ है। जो रीतिबद्ध नही है वह विपरीत मे रीतिमुक्त है, ऐसा मान लेना

बतलाई हैं। कहा है—

> "अधिकाश मे ये भी श्रृगारी कवि हैं और उन्होने भी श्रृगार रस के फुटकर पद्य कहे है। रचना शैली मे किसी प्रकार का भेद नही है। ऐसे कवियो मे घनानद सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इस प्रकार के अच्छे कवियो की रचनाओ मे प्राय मार्मिक और मनोहर पद्यो की सख्या कुछ अधिक पाई जाती है। बात यह है कि इन्हे कोई बन्धन नही था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी ये लिख गये। रीतिबद्ध ग्रथ जो लिखने बैठते थे उन्हे प्राय अलकार या नायिका को उदाहृत करने के लिए पद्य लिखना आवश्यक था जिनमे सब प्रसग उनकी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल नही हो सके थे। रसखान, घनानन्द, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए है, उनमे किसी ने लक्षण बद्ध रचना नही की है।"[95]

'रीतिमुक्त'—शब्द का उपयोग न करते हुए भी शुक्ल जी ने रीतिमुक्त कवियो की सारी विशेषताएँ ही अति सक्षेप मे नही बतलाई अपितु कवियो के नाम भी दे दिए। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद ने और बाद के इतिहास ग्रथो मे इन्ही पक्तियो का पल्लवन किया गया है।

रीतिकाल के अन्य कवियो मे रीतिमुक्त—कवियो का उल्लेख सवप्रथम करते हुए आचार्य शुक्ल ने अन्य प्रकार से रचनाएँ लिखने वाले कवियो के उल्लेख क्रमश कर दिए। छठे वर्ग तक तो सख्याएँ बतला दी हैं। रीतिमुक्त को सबसे ऊपर रखा है और बाद मे पाँच वग रह जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(2) प्रबन्ध काव्य की उन्नति इस काल म कुछ विशेष न हो पाई लिखे तो अनेक प्रबन्ध गए पर उनम से दो ही चार मे कवित्व का यथेष्ट आकर्षण पाया जाता है। सबल सिंह का महाभारत पद्माकर का राम रसायन।'[96]

(3) 'कथात्मक प्रबन्धो से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने म आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबन्ध कह सकते हैं। दानलीला, मानलीला, जल विहार, वन विहार, मृगया, झूला, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मगलवर्णन, रामकलेवा इत्यादि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।'[97]

(4) "चौथा वर्ग नीति के फुटकल पद्य कहने वालो का है। इनको हम कवि कहना ठीक नही समझते ऐसे कवियो को हम कवि न कहकर सूक्तिकार कहेंगे। रीतिकाल के भीतर वृद, गिरिधर, घाघ और बैताल अच्छे सूक्तिकार हुए हैं।'[98]

(5) 'पाँचवाँ वर्ग ज्ञानोपदेशको का है जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की

बातो को पद्य मे कहते हैं ऐसे ग्रथकारो को हम केवल पद्य-कार कहेगे । हाँ इनमे जो भावुक और प्रतिभा सम्पन्न हैं, जो अन्योक्ति आदि का सहारा लेकर भगवत्प्रेम, ससार के प्रति विरक्ति, करुणा आदि उत्पन्न करने म समर्थ हुए हैं व अवश्य ही कवि क्या उच्चकोटि मे कवि कहे जा सकते हैं।"[99]

(6) "छठा वर्ग कुछ भक्त कवियो का है जिन्होने भक्ति और प्रेम पूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तो के ढग पर गाए हैं।"[100]

इनके अतिरिक्त प्रशस्ति परक काव्यो का शुक्ल जी ने अलग से उल्लेख किया है। ये ऐतिहासिक नायको को आधार बनाकर लिखे गए हैं। इनके सम्बन्ध मे लिखा—

"आश्रयदाताओ की प्रशसा म [प्रशस्ति काव्य ही हुए] वीररस की फुटकल कविताए भी बराबर बनती रही, जिनमे युद्धवीरता और दान-वीरता दोनो की बडी अत्युक्ति पूर्ण प्रशसा भरी रहती थी। ऐसी कविताएँ थोडी बहुत तो रस-ग्रथो मे आदि म मिलती है कुछ अलकार ग्रथो के उदाहरण रूप मे (जैसे शिवराज भूषण) और कुछ अलग पुस्तकाकार जस 'शिवाबावनी', 'छत्रसाल दशक', 'हिम्मत बहादुर विरुदावली इत्यादि।'[101]

प्रशस्ति काव्य—को या इतिहास के नायको का आधार बनाकर लिखे गए काव्यो का आधार बनाकर लिखे गए काव्यो को एक और वर्ग मान लें तो रीतिमुक्त को छोडकर 6 वर्ग तो शुक्ल जी ने बतला दिए। वे इस प्रकार हैं—(1) प्रबन्ध काव्य (2) वर्णनात्मक प्रबन्ध (3) नीति (4) पद्यकार (5) भक्तिपरक और (6) प्रशस्तिपरक।

कविताओ को छोडकर रीतिकाल मे गद्य पर भी—(योगवासिष्ठ 1798 सवत की रामप्रसाद निरजनी की रचना का उल्लेख करते हुए) बहुत सक्षेप म क्यो न हो, लिख दिया है। इसी हिन्दी के प्रथम नाटक [महाराज विश्वनाथ सिंह का आनन्द रघुनन्दन नाटक] का उल्लेख भी कर दिया। गणेश कवि के 'प्रद्युम्न विजय' का उल्लेख किया। आचार्य शुक्ल ने तीन चार पृष्ठों मे ही यह सब लिखा है। ऐतिहासिक रूप मे—इतिहास के क्रम मे कहना चाहिए—रचनाओ, कवियो और उनकी प्रवृत्तियो का उल्लेख करते समय वे उनका तुरन्त मूल्याकन भी कर देते हैं।

रीतिबद्ध कवियो मे आचार्य शुक्ल ने रीति ग्रथ न लिखने पर भी बिहारी को रीति ग्रथकारो के साथ रखा है और कारण भी दिया है। इसी तरह रीतिमुक्त कवियो मे (रीतिमुक्त का उल्लेख न कर रीतिमुक्त की विशेषताएँ बतलाते हुए ही) उन्होने रसखान का उल्लेख कर दिया है। उनकी पक्ति फिर दोहरा देता हू—

"रसखान घनानद, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए

हैं, उनमे किसी ने लक्षणबद्ध रचना नही की है।"[102]

रसखान को आचार्य शुक्ल ने कृष्ण भक्त कवियो के अन्तर्गत रखा है। वे भक्ति काल के कवि है। भक्तिकाल के फुटकल कवियो मे भी वे नही आते। किन्तु रसखान का प्रेमोन्मत्त रूप भक्ति के साथ साथ वे रीतिमुक्त कवियो के निकट भी बैठता है। अत उन्होने घनानन्द के साथ साथ रसखान का उल्लेख रीतिमुक्त कवियो के साथ कर दिया है। रसखान पर स्वतन्त्र रूप से लिखते समय वे घनानन्द का स्मरण कर लेते हैं। लिखा है—

> "प्रेम [रसखान द्वारा व्यजित] अत्यन्त गूढ भगवद्भक्ति मे परिणत हुआ। प्रेम के ऐसे सुन्दर उदगार इनके सवैयो मे निकले कि जन-साधारण प्रेम या शृगार सम्बन्धी कवित्त सवैयो को ही 'रसखान' कहने लगे—जैसे 'कोई रसखान सुनाओ।' इसकी भाषा बहुत चलती सरल और शब्दाडम्बर मुक्त होती थी। शुद्ध ब्रज भाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानन्द की रचनाओ मे हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[103]

रसखान को पढते हुए शुक्लजी को घनानद याद आ जाते हैं और रीतिमुक्त कवियो मे भी घनानद के साथ रसखान का उल्लेख शुक्लजी कर देते हैं।

8 9 क्या रीतिकालीन काव्य अभिशप्त है ?

प्रश्न है रीतिकालीन काव्य को अभिशप्त मान लिया जाए। क्या आचार्य शुक्ल के मूल्याकन ने और इतिहास मे लिखी उनकी सम्मति ने रीतिकाल को अभिशप्त बना दिया ? डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—

> "भारतीय इतिहास मे रीतिकाल की भाँति हिन्दी साहित्य के इतिहास मे 'रीतिकाव्य' भी अत्यन्त अभिशप्त काव्य है। आलोचना के आरभ मे ही इस पर आलोचको की वक्र दृष्टि रही है। द्विवेदी युग ने सदाचार विरोधी कहकर नैतिक आधार पर इसका तिरस्कार किया, छायावाद की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि रीतिकाव्य के स्थूल सौंदर्य बोध के प्रति हीन भाव रखती थी, प्रगतिवाद ने इस पर समाज विरोधी और प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाया और प्रयोगवाद ने इसकी रूढ विषयवस्तु एव अभिव्यजना प्रणाली को एकदम बासी घोषित कर दिया।"[104]

डॉ० नगेन्द्र की ये पक्तियाँ हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास के षष्ठ भाग [रीतिकाल रीतिबद्ध] के उपसहार मे लिखी गई आरम्भ की पक्तियाँ हैं। वस्तुत डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य को अभिशप्त काव्य नही मानते। अतः उनका इस प्रकार से शुरू करना या प्रयत्न कर रीतिकाव्य की विशेषताओ को उजागर करना चाहते

हैं। तदथ उन्होने रीतिकाव्य की महत्ता उसके कलागत मूल्यो, आलोचना सजना के सयोग मे तथा उसके वैभव मे प्रतिपादित की है। ऐसा कहते हुए भी उन्होन एक बात स्वीकार की है कि रीतिकाव्य का नैतिक मूल्य निश्चय ही कम है। इस स्वीकृति के साथ वे लिखते हैं—

> "काव्य वस्तु के नैतिक मूल्य का काव्य रस के नैतिक मूल्य पर अवश्य ही प्रभाव पडता है और इस दृष्टि से रीति काव्य का नैतिक मूल्य निश्चय ही कम है। फिर भी, अपने युग की आत्मघाती निराशा को उच्छिन्न करने मे उसने स्तुत्य योगदान किया, इसमे सदेह नहीं है और इस सत्य को अस्वीकार करना कृतघ्नता होगी।"[105]

रीतिकालीन साहित्य के अवमूल्यन के लिए क्या शुक्लजी अकेले उत्तरदायी हैं? ऐसा तो नही लगता। मैं ऊपर कह चुका हूँ और फिर दोहराता हूँ कि 'इतिहास' तथा 'समीक्षा दोनो को अलगाकर शुक्लजी के कथनो पर विचार करेंगे तो प्रतीत होगा कि शुक्लजी अपनी जगह आज भी ठीक है। विद्वान शुक्लजी की समीक्षाओ को स्वीकार करते है किन्तु इतिहास को स्वीकार नही करते। अत मैं रीतिकालीन काव्य के इन दोनो रूपो को अलगाकर विचार करूँ तो सभवत शुक्लजी की अवधारणाओ को अधिक स्पष्ट कर सकूगा।

रीतिकाल—नामकरण इतिहास से सम्बन्धित है। बद्ध हो, मुक्त हो या सिद्ध हो—नामकरण मे 'रीति है। यह नामकरण उक्त युग की प्रधान प्रवृत्ति है। इस नामकरण मे आचायत्व की ध्वनि है। कवि विशेष के काव्य म पाई जाने वाले काव्य की ध्वनि नही है। यह तो हम कहते हैं—शुक्लजी ने कहा है—और आज भी सब स्वीकार करते है कि रीतिकाल मे आचाय व कवि दोनो का सयोग हुआ। डा० नगेन्द्र ने कहा आलोचना और सजना का सयाग हुआ। आलोचना से उनका तात्पय आचायत्व से है। इस युग के नामकरण मे तीन नाम उभर कर आए—अलकार काल, रीतिकाल और शृगार काल। अलकार नाम मिश्रबन्धुओ का था। वह अधिक नहीं चला क्योकि अलकार रीति का एक भाग मान लिया गया। रीति मे इसके साथ-साथ अलकार का समाहार हो गया। अब रहे दोनो नाम रीतिकाल और शृगार काल। रीतिकाल—नामकरण मे कवियों का ध्यान कवि होने के रूप मे न जाकर आचायत्व की ओर अधिक जाता है। या कहिए कि रीति ग्रथो की ओर जाता है। रीतिग्रथ—का अथ लक्षण निरूपण (चाहे अलकार हो, रस हो या और कोई लक्षण हो) से सम्बन्धित ग्रथ ही लिया गया है। शुक्लजी के रीतिकाल नामकरण में यही बात है। वस्तुत रीतिकाल के प्रधान कवि उन्होंने रीति ग्रथकारो को ही माना 1700-1900 सवत के बीच रीति-ग्रथ अधिक लिखे गये। औसतन अधिक लिखे गए। इस प्रकार के ग्रथो की प्रवृत्ति अधिक रही। इसलिए रीतिकाल नाम रखा गया। रीति ग्रथकारो के लक्षण-ग्रथो के कारण रीतिकाल नाम

रखा गया है। कवियो की कविता के काव्य विषयो के आधार पर नामकरण हुआ ही नही। इस तरह से नामकरण करने का प्रयत्न आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया — शृंगारकाल नाम रखा। किन्तु एक बार शुक्लजी का नाम चल गया—वह चल गया। अब कौन रोके ? रीतिकाल की कविता रीति के प्रति प्रतिबद्ध रही है—बधी हुई वाग्धारा है। यह ऐसी बात हो गई कि इतिहास मे उसका नाम 'रीतिकाल' हो गया। इतिहास मे आचार्य शुक्ल ने इस काल के साहित्य को एक निश्चित ढाचे मे स्वीकार कर लिया। उन्हे क्या पता कि इस नामकरण के कारण इस काल के समस्त साहित्य का अवमूल्यन हो रहा है। भूषण ने वीर रस की उत्कृष्ट रचना लिखी। शृंगार रस की नही लिखी किन्तु रीति ग्रंथ लिखने के कारण वह उसी श्रेणी मे रख दिया गया। घनानन्द की उत्तम कविता भी उन्हे रीतिकाल की मुख्य धारा मे बैठने नही देती। उन्हे अन्य कवियो मे जगह मिली। मानो शुक्लजी ने कवियो के ऐतिहासिक स्थान का निर्धारण कर दिया। यह स्थान इतना निश्चित हो गया कि डॉ० नगेन्द्र एव आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के प्रयास भी बहुत सफल नहीं हुए। रीति — नाम इतना बलवान है कि काव्य के विषय की ओर ध्यान नही जाता और चला भी गया तो शृंगार तक जाता है। शृंगार की अति के कारण भी उसका अवमूल्यन होने लगता है।

आचार्य शुक्ल अपने सिद्धान्तो के प्रति बडे दृढ और निर्मम रहे है। उनकी दृढता और निर्ममता के कारण आज भी लोग सिर पीट रहे है। अकेले डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह ही नही बल्कि बहुत से लोग हैं जो उनके इतिहास से नाराज है। आचार्य शुक्ल ने अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए बडे से-बडे कवि को फुटकल खाते म या अन्य कवियो मे डाल दिया। उन्होने अनुभव किया कि कविता कितनी ही श्रेष्ठ हो वह उस काल की मुख्य प्रवृत्ति मे बैठती नही है। एक बार काल प्रवृत्ति का निर्धारण करने के बाद—नामकरण कर लेन के बाद—सबको उस मुख्य धारा मे अलग कर दिया। इस तरह से अलगाव म सिद्धान्त की रक्षा हो गई और स्वत धारा से हटकर लिखने वाले अलग रूप मे पहचाने गए। ऐसे कवियो को इतिहास म क्या स्थान दगे ? शुक्लजी ने जो स्थान दिया उससे उस स्थान की कल्पना विद्वानो के लिए भारी हो रहा है।

8 10 कुछ प्रश्न और समाधान

प्रश्न है क्या आचार्य शुक्ल की साहित्यिक अभिरुचि म कमी थी। यह तो स्पष्ट है। उनकी साहित्यिक अभिरुचि ने उनकी समीक्षाओ को बलवान बनाया है। किसी कवि की समीक्षा लिखते समय उन्होंने अपनी प्रतिभा से ऐसी पहचान करवाई कि उसकी बाद उनका विरोध करने वाले भी देते हैं और इतिहास के प्रति किए गए अन्याय को चुपचाप स्वीकार करते आ रहे हैं। उन्हें इतिहास कहता

भारी हो रहा है। घनानद रीति ग्रथ नही लिखता। कविता उत्तम कोटि की है। रीतिकाल के अन्य कवियो मे बैठकर भी अपनी जगह स्वतन्त्र कवि के रूप मे वह श्रेष्ठ है—इस तथ्य को शुक्लजी मुक्त कठ से लिखते हैं। शुक्लजी की सहृदयता मे कोई कमी नही है।

आचार्य शुक्ल अपने पथ पर दृढ़ रहे हैं। वे गगा गये गगादास और जमना गए जमनादास नही हुए। उनकी दृढ़ता, उनके सिद्धान्तो के कारण है। इतिहास लिखने मे,—किसी काल का नामकरण करने मे—काल विशेष की सीमाओ के निर्धारण मे, वे बडे दृढ रहे हैं। उनकी दृढ़ता ने उनको बलवान बनाया। और लोग नाराज हो जाएगे, इसकी चिंता उन्होंने नही की। आचार्य शुक्ल के सामने हिन्दी साहित्य का समस्त इतिहास था। वे केवल रीतकाल पर नही लिख रहे थे। रीतिकालीन साहित्य पर लिखते समय वे भक्ति को कैसे भूल सकते थे। अन्य कवियो का उल्लेख करते हुए और उनकी प्रवृत्ति को अलगाते हुए पद्यकार कवियो की सराहना की है—"इनमे जो [पद्यकारो मे] भावुक और प्रतिभा सम्पन्न हैं जो अन्योक्ति आदि का सहारा लेकर भगत्प्रेम, ससार के प्रति विरक्ति, करुणा आदि उत्पन्न करने म समर्थ हुए हैं वे अवश्य ही उच्चकोटि के कवि कहे जा सकते हैं।" 106 कवि को विषय-वस्तु एव काव्य प्रतिभा के आधार पर उच्च-कोटि का कह दिया किन्तु उसका इतिहास म एक अलग वग मानकर [अन्य कवियो मे पाँचवा वग] रखा गया। शुक्लजी न प्रशस्ति काव्य लिखने वालो का वग तो अलग नही किया किन्तु छठे वग के बाद म उसके सम्बन्ध म विस्तार से एक अनुच्छेद लिख दिया। उनके वाक्य का स्वर पहचानें तो मूल्याकन का बोध हो जाएगा। उनके वाक्य लिख रहा हूँ—

> "आश्रयदाताओ की प्रशसा मे वीररस की फुटकल कविताएँ भी बराबर बनती रही जिनम युद्धवीरता और दानवीरता दोनो की बडी अत्युक्तिपूर्ण प्रशसा भरी रहती थी।"107

पक्तियो मे यह बात स्पष्ट रूप से कह दी गई है कि ऊपर जो वग बनाए गए हैं, उन वर्गों के अलावा इस प्रकार की कविता भी चल रही थी। इस प्रकार की कविता पहले वीरगाथा काल म भी लिखी गई है। उक्त प्रवृत्ति का रूप अब भी प्रचलित था। उसको अलग से अलगाने की क्या जरूरत है ? शुक्लजी 'फुटकल कविताएँ बराबर बनती रही'—जब कहते हैं तो वे इस प्रकार की कविता को पूव परम्परा से जोडते हैं, यह मानना चाहिए। इतिहास की धारा म वे प्रवृत्ति को अलगाते हैं और अलगाने का कोई आधार मिला तो अलगा देंगे और उसकी विशेषता जिसके कारण वह अलग है, यह बतलाएगे। अन्यथा उसको उसी धारा की क्षीण रखा से जोडकर चुप हो जाएँगे। कोई खास बात नही। फिर उसके सम्बन्ध म क्या लिखें ?

भूषण के सम्बन्ध में शुक्लजी के न्याय पर विचार करें तो बात और अधिक स्पष्ट होगी। भूषण ने 'शिवराज भूषण' अलंकार निरूपण करनेवाला रीतिग्रंथ लिखा, यह सच है। वे रीति ग्रंथकार हुए। छत्रपति शिवाजी के यशोगान में काव्य लिखा—प्रशस्तिपरक काव्य लिखा। प्रशस्ति जनता की चित्त वृत्तियों के अनुकूल थी। शुक्लजी ने भूषण को सराहा और काव्य का मूल्यांकन भी तदनुकूल किया। यह सब तो ठीक है। किन्तु इतिहास में वे रीतिग्रंथकार ही स्थान पाने के अधिकारी हुए। भूषण की कविता कैसी थी? उसके क्या गुण हैं यह तो समीक्षा पढ़ने पर ज्ञात होगा। इतिहास में वे रीति ग्रंथों के रचयिता रह गये। वे अपने ऐतिहासिक सिद्धान्तों के अनुसार जिस तथ्य को जहाँ लिखना आवश्यक है, वे उसको वहीं पर लिखते हैं। कवि का उल्लेख होने पर उसके सम्बन्ध में पूरा वृत्त वे एक साथ नहीं लिखते। इतिहास की प्रवृत्ति के अनुसार अलग-अलग स्थानों पर लिखते हैं। आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में काव्य लिखना—नायक की प्रशस्ति करना, यह भी रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति रही है। इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल रीतिकालीन अन्य काव्य के अन्तर्गत गौण मानकर लिखते हैं—चलते ढंग से लिखते हैं। इस प्रवृत्ति से पूर्व अन्य काव्यों के भी छः वर्ग उन्होंने अलग किये हैं। इसे सातवाँ वर्ग भी नहीं कहते। यह कहते कि प्रशस्ति में—आश्रयदाता के गुण स्तवन में—भी कविता बराबर लिखी जाती रही। इसे वे भूषण जैसे अपवाद को छोड़कर रीतिकाल की उत्तम प्रवृत्ति नहीं मानते। इस प्रवृत्ति के उल्लेख में रीतिकाल का अवमूल्यन ही है। फिर प्रशस्ति केवल शिवाबावनी और छत्रसालदशक में नहीं अपितु रीतिग्रंथों के आरम्भ में भी इस प्रवृत्ति की कविता मिलती है। रीति ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में आश्रयदाताओं का उल्लेख किया है और प्रशस्तिपरक छन्द रचे हैं। इसका उल्लेख भी वे चलते ढंग से यहाँ कर देते हैं। किन्तु इसे वे विशेष महत्त्व नहीं देते। मूल बात वे रीति ग्रंथकार—की प्रवृत्ति को प्रधान बनाकर इतिहास में उनका स्थान निश्चित कर देते हैं।

मैं प्रश्न पूछता हूँ कि रीतिकाल के कवियों का अध्ययन आचार्य रूप में न तो ठीक से हुआ है और न हो रहा है। ऐसा क्यों? रीतिकाल के कवियों को आचार्य माना ही नहीं गया। स्वयं शुक्लजी ने उन्हें आचार्य नहीं माना किन्तु आचार्यत्व की प्रवृत्ति के कारण उनका नामकरण हो गया। वस्तुतः रीतिकालीन कवियों का अध्ययन उनकी काव्य प्रतिभा के रूप में ही हुआ है। हम रीतिकालीन कवियों द्वारा लिखे गये लक्षणों को कम पढ़ते हैं और उदाहरणों को अधिक पढ़ते हैं। इस रूप में मानने पर रीति ग्रंथकार के काव्य हों (रीतिबद्ध कह लीजिए) या रीतिमुक्त काव्य हो—एक श्रेणी में आ जाते हैं। बिहारी की तरह हम घनानन्द को भी सराहते हैं। इतिहास में वे अलग खानों में रख दिये गये किन्तु काव्य में तो एक स्थान में जुड़ जाते हैं। इस तरह हम सोच तो लेते हैं किन्तु शुक्लजी के

इतिहास को कौन बदले ? रीति नाम इतना जबरदस्त है कि इसी मे इस युग के कवियो को ऐतिहासिक स्थान दे दिया गया है।

आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल मे जितनी सामग्री का उपयोग किया, वह स्वय उन्हे आवश्यकता से अधिक प्रतीत हुई। चयन उनका अपना है। शिवसिंह सरोज या मिश्रबन्धु विनोद (अधिक सामग्री मिश्रबन्धु विनोद से ही ली) की सारी सामग्री का उपयोग उन्होंने किया है, ऐसा तो नही कह सकते। शुक्लजी ने ऐसी रचनाओ को छोड दिया, जो साहित्य की कोटि मे नही आती और नोटिस मात्र (शुक्लजी का ही शब्द है) है। उन्होने रीतिग्रथकार 57 कवियो का उल्लेख किया और अन्य कवियो मे 46। निश्चित ही 57 सख्या 46 से ज्यादा है। 57 कवियो ने रीतिग्रथ लिखे हैं। शुक्लजी ने निर्णय दे दिया और नामकरण हो गया।

आज तो स्थिति यह है कि रीतिकालीन रचनाओ का अम्बार लग गया है। शुक्लजी के इतिहास मे जितनी रचनाओ के उल्लेख मिलते है, उनसे कही अधिक परिमाण मे, दुगुने से भी अधिक रचनाएँ प्रकाश मे आ गई हैं। शोध काय की प्रगति अधिक हो गई है और काय जारी है। सभवत आज की प्रकाशित सामग्री भी शुक्लजी के सामने होती तो शुक्लजी 'रीतिकाल'—नामकरण न कर कुछ और नाम देते। किन्तु जैसे कि जनता की कहो या विद्वानो की कह लो—नामकरण पर आपत्ति नही करते। कहते हैं, जो नाम चल गया है, उसको बदलने मे क्या रखा है ? मूल्याकन नये सिरे से कर सकते हैं। पुनर्मूल्याकन हो रहे है। प्रासगिकता पर विचार हो रहे हैं। अवधारणाएँ बदल रही हैं। डॉ० मनमोहन सहगल पटियाला से यहा आए (मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरगाबाद) उनका कहना है कि पजाब मे गुरुमुखी लिपि मे लिखी हुई सैकडो ब्रजभाषा की रचनाएँ मिलती हैं। उन सबका लिप्यतरण करना और सम्पादित कर प्रकाशित करना आवश्यक है। यही स्थिति गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश आदि प्रदेशो की है। आचार्य शुक्ल के इतिहास मे ऐसी रचनाओ का प्रवेश, उस काल की परिस्थितियो के कारण सभव नही हो सका। और ऐसा न होने पाने के कारण ज्ञात रचनाएँ आज भी इतिहास से कटकर ही रह गई हैं। ज्ञात रचनाओ को इतिहास की धारा मे जोडकर रखेंगे तो सभवत रीतिकाल का स्वरूप बदलेगा और मूल्याकन म भी अन्तर आएगा। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व जैसा कोई प्रबल व्यक्तित्व सामने आए तो यह काम हो सकता है। हम सामग्री देखते है, काम करना चाहते हैं किन्तु शुक्लजी हम पर कितने सवार हैं कि काम नही हो रहा है इसीमे शुक्लजी के बल का बोध होता है।

☐☐☐

9 रीतिकाल और आधुनिककाल

9 1 रीतिकाल की काव्यभाषा

रीतिकाल की काव्यभाषा ब्रजभाषा है। यह मुगल काल है। यों तो भक्तिकाल में भी काव्यभाषा ब्रजभाषा रही है किन्तु रीतिकाल में ब्रजभाषा अपने उत्कर्ष पर थी। आधुनिक काल में भाषा परिवर्तन हुआ है। ब्रजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने लिया। यह सामान्य परिवर्तन नहीं है। ऐसा क्यों हुआ ? अचानक ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ क्या ? यह अब भी विचारणीय है। ब्रजभाषा प्रेमियों को इससे बड़ी तकलीफ हुई है। वीरगाथाकाल 325 वर्षों का रहा। उसी तरह भक्तिकाल भी 325 वर्षों का है। इस तुलना में रीतिकाल 200 वर्षों का है। संवत 1700 से संवत 1900 अर्थात 1643 ई० 1843 ई० तक का काल रीतिकाल है। डॉ० महेन्द्र प्रतापसिंह का कहना है कि 1843 पर रीतिकाल को समाप्त कर देने की घोषणा करना गलत है।[108] ऐतिहासिक दृष्टि से क्या ब्रजभाषा पर अन्याय हो गया ? आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में भाषा परिवर्तन पर विस्तार से विचार करते हैं। पद्य से गद्य की ओर आने को ही वे ऐतिहासिक परिवर्तन कहते हैं। यहाँ तक कि आधुनिककाल को वे सीधे गद्यकाल कह देते हैं। गद्य की भाषा ब्रजभाषा नहीं रही। पद्य की भाषा तो आधुनिक काल की ब्रजभाषा रही है। भारतेन्दुयुग तक ब्रजभाषा रही है। किन्तु भारतेन्दु बाबू को आचार्य शुक्ल रीतिकाल में क्यों गिनाते ? संक्षेप में हम रीतिकाल की काव्य भाषा पर अलग से विचार करना चाहिए। हमें ऐतिहासिक कारणों की खोज करनी चाहिए। तभी कुछ समाधान मिल सकता है।

9 2 ब्रजभाषा काव्यभाषा

ब्रजभाषा को हिन्दी में काव्य भाषा का स्थान मिला है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल दोनों में ही यह भाषा भौगोलिक विस्तार पा चुकी थी। रीतिकाल में इस भौगोलिक विस्तार पर भिखारीदास ने जो कुछ लिखा उसे आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में उद्धृत किया है।[109] यह बात सच है कि ब्रजभाषा मुगल काल

मे अपने उत्कर्ष पर रही है। मुगल बादशाहो का प्रभाव भारत मे जहाँ जहाँ फैला वहाँ-वहाँ ब्रजभाषा फैली है। अमीर खुसरो की भाषा [मुगलो से पूर्व की सुलतानो के समय की] दिल्ली की भाषा है। क्या उक्त भाषा आधुनिककाल तक प्रतीक्षा करती रही है? इस सम्बन्ध मे मैंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी वीरकाव्य [1600 1800]' के अन्तिम अध्याय 'वीरकाव्यो की राष्ट्रीयता' मे विस्तार से विचार किया है।[110] यहाँ पर सक्षेप मे इतना ही कहना चाहूँगा कि मुगल काल के उत्कर्ष के साथ ब्रजभाषा का उत्कर्ष जुडा हुआ है। मुगल काल मे ब्रजभाषा के साहित्यिक उत्कर्ष पर रहने के दो प्रधान कारण हैं—(1) कृष्ण साहित्य और (2) आगरा—मुगलो की राजधानी होना। मुगल बादशाह, अपने उत्कर्ष काल मे आगरा मे रहे हैं। सुल्तानो के काल मे राजधानी दिल्ली थी। मुगल काल मे आगरा राजधानी हो गई। बाद मे लालकिला बन जाने पर मुगल बादशाह [औरगजेब के बाद] दिल्ली चले गये। उसके बाद दिल्ली फिर राजधानी बन गई। राजधानियो के बदलने का प्रभाव भाषा तथा साहित्य से सीधा सम्बन्ध रखता है।

दिल्ली———————→	आगरा———————→	दिल्ली
[सुलताना का काल]	[मुगलो का उत्कर्ष काल]	औरगजेब के बाद
हिन्दवी—हिन्दुई	[ब्रजभाषा]	[मुगलो का पतनकाल]
[खडी बोली]		[हिन्दवी—हिन्दुई—हिन्दुस्तानी हिन्दी]
		[खडी बोली]

ऊपर का रेखाकन बहुत स्थूल है। दिल्ली—आगरा—दिल्ली—राजधानियो के परिवर्तन का प्रभाव भाषा तथा साहित्य पर पडनेवाले प्रभाव को दिखलाने के लिए यह रेखाकन है। सुलतानो के काल की भाषा का नमूना हमे अमीर खुसरो मे मिलता है। केन्द्र मे सुलतानो का पतन हो गया। मुगलो ने अधिकार कर लिया। इससे केन्द्र के सुलतान भारत मे ही सीमा प्रदेशो की ओर चले गये। सुलतानो के केन्द्र जहाँ जहा भारत मे बन गये थे वे पूरे टूटे नही थे। औरगजेब के काल तक उनके केन्द्र बराबर मिलते हैं। सबसे बडा केन्द्र तो दक्षिण भारत था। अलाउद्दीन खिलजी के समय मे ही केन्द्र बन गया था। मुहम्मद तुगलक के समय से देवगिरि का दौलताबाद हुआ और बाद मे बहमनियो ने राज्य किया। पश्चात बहमनी-बादशाहो के और छोटे छोटे राज्य हो गये जिनके केन्द्र गोलकोण्डा, बीजापुर, बीदर, अहमदनगर आदि थे। क्या ये सब राज्य मुगलों के अधीन थे। मुगल बादशाह स्वय इन सबसे लडते रहे है। अकबर ने पहले अहमदनगर पर अधिकार किया। शाहजहाँ ने दौलताबाद पर अधिकार किया और इसका अत औरगजेब ने गोलकोण्डा और बीजापुर पर अधिकार करके लिया। मुगलो के उत्कर्ष काल

मे सुलतानो का दक्षिण का केन्द्र मुगलो से अलग रहा है। दक्षिण के इस केन्द्र म सुलतानो की दिल्ली की भाषा—अमीर खुसरो की भाषा—चलती रही है। इस भाषा को दक्खिनी कहा गया है। भक्तिकाल और रीतिकाल के समानान्तर रूप म दक्षिण म दक्खिनी साहित्य लिखा जाता रहा है। मुगलो का दक्षिण मे प्रभाव बढ जाने से—शाहजहाँ और औरगजेब के काल म—ब्रजभाषा भी दक्षिण म पहुँच गई है। भारत के पूर्व मे ब्रजभाषा के उत्कर्ष काल मे अवधी उत्कर्ष पाती रही है। सूफियो की भाषा अवधी रही है। सुलतानो का एक केन्द्र पूर्व मे भी पहुँचा है। केन्द्र म ब्रजभाषा का भौगोलिक विस्तार हुआ है। केन्द्र की भाषा सुलतानो के पतन के कारण परिधियो म विस्तार पा गई।

ब्रजभाषा के उत्कर्षकाल मे ही अवधी और दक्खिनी मे साहित्य लिखा जाता रहा। आचार्य शुक्ल का ध्यान अवधी की ओर—रामचरित मानस की ओर—गया है। इस ब्याज स उन्होंने सूफी साहित्य को भी चमका दिया किन्तु उनका ध्यान दक्खिनी की ओर नही जा सका। वह काम बाद मे राहुल ने किया। किन्तु शुक्लजी की नजर से चूक जाने पर इतिहास मे फिर जगह दिलाना कठिन काम ही है।

दिल्ली की भाषा—अमीर खुसरो की हिन्दुई भाषा—क्या ब्रजभाषा के काल म—मुगलो के काल म कहिए—एकदम गायब हो गई थी। ऐसा नही है। इतना ही है कि उसे काव्य भाषा का पद नही मिल सका है। यहाँ पर मैं यह बात स्पष्ट रूप से कहना चाहूँगा कि ब्रज के मूल केन्द्र आगरा, मथुरा, अलीगढ—आदि स्थानो से हटकर ब्रजभाषा अन्य स्थानो पर जहा भी पहुची है वह काव्य भाषा के रूप म ही पहुची है। ब्रजभाषा का भौगोलिक विस्तार काव्य भाषा के रूप म हुआ है।

9 3 काव्य भाषा और बोलचाल की भाषा

ब्रजभाषा काव्यभाषा रही है—इसको भी भक्तिकाल तथा रीतिकाल के सन्दर्भ म अलग अलग रूप म पहचानने का प्रयास किया जा सकता है। भक्तिकाल की ब्रजभाषा म रीतिकाल की ब्रजभाषा म भेद करना चाहिए। ब्रजभाषा का चरम रूप सूरदास की भाषा म है और बाद म कृष्ण साहित्य का आधार ब्रजभाषा ही रही है। भक्तिकाल की ब्रजभाषा विकसित और प्रौढ होने पर भी उसका भौगोलिक प्रसार काव्य भाषा के रूप म रीतिकाल म ही हुआ है। रीतिकाल म ब्रज [illegible] से अधिक कवियो की भाषा हो गई। [illegible] भाषा म [illegible]। संस्कृत की परम्परा की भाषा म [illegible] है। रीतिकाल म [illegible] रूप म ब्रज [illegible] राजस्थान [illegible] कवियो की भाषा [illegible] थी। [illegible]—ब्रजभाषा म [illegible] अधिक जुडी है। रीतिकाल का रीति रूप [illegible] रूप—ब्रजभाषा के साथ जुडा हुआ रूप है।

काव्यभाषा से हटकर भाषा का बोलचाल का रूप अलग है। यह रूप हिन्दुई या हिन्दवी का है। शाहजहाँ के काल मे इसे हिन्दुस्तानी भी कहा गया है। शाहजहाँ के भाषा ज्ञान के सम्बन्ध मे मुल्ला अब्दुल हमीद ने लिखा है—

> "बादशाह [शाहजहाँ] अधिकतर फारसी बोलते हैं और बहुत अच्छी तरह से बोलते हैं। जो लोग फारसी नही जानते, उनसे हिन्दुस्तानी बोली मे बातें करते हैं। कुछ तुर्की भी समझते हैं, मगर बोलते कम हैं।"[111]

शाहजहाँ नामा मे 'हिन्दुस्तानी जबान' का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है।[112] यह हिन्दुस्तानी जबान अमीर खुसरो की भाषा है। हिन्दुई और हिन्दवी का विकसित रूप है। भौगोलिक रूप मे इसका विस्तार बोलचाल के रूप मे मुगल काल में सवत्र हो गया था। इतना ही है कि इस भाषा को काव्यभाषा का पद नही मिल सका। सगीतज्ञो, कलाकारो तथा अन्य व्यवसाय करने वाले लोगो ने हिन्दुस्तानी अपना ली थी। शाहजहाँनामा मे इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। यात्रा पर रहनेवाले कवियो की भाषा म हिन्दुस्तानी के रूप रीतिकाल मे मिलते हैं। भक्तिकाल मे सन्तो की भाषा मे हिन्दुस्तानी के सकेत पाए ही जाते हैं। दक्षिण मे नामदेव और अन्य सन्तो की भाषा म हिन्दुस्तानी के रूप मिलते हैं। रीतिकाल मे भूषण की भाषा म भी हिन्दुस्तानी का प्रभाव दिखलाई देता है। सक्षेप म हिन्दी भाषा मे दिल्ली-आगरे की बोलियो के विस्तार को यो समझा जा सकता है।

(1) दिल्ली की भाषा—हिन्दुई हिन्दवी हिन्दुस्तानी—बोलचाल की भाषा।
(2) आगरे की भाषा—ब्रजभाषा—काव्य भाषा।

9 4 रीतिग्रन्थ और ब्रजभाषा

ब्रजभाषा—काव्यभाषा के रूप मे रीतिग्रन्थो की भाषा बन गई। कवियो की यह आदर्श भाषा हुई। इस रूप मे इस भाषा का विस्तार, भारत के सुदूर प्रदेशो मे—विशेष रूप से जहा-जहाँ मुगल सत्ता पहुची है, वहाँ-वहा—हुआ है। डॉ० मलिक मोहम्मद द्वारा सम्पादित—'हिन्दी साहित्य का हिन्दीतर प्रदेशों की देन' मे—कई उदाहरण मिल जाएँगे। ब्रजभाषा का भौगोलिक विस्तार भक्तिकाल की अपेक्षा रीतिकाल म अधिक हुआ। विशेष बात यह कि यह भाषा रीतिग्रन्थो की भाषा अधिक हो गई। इसी महीने मे (3 अप्रैल 1986 को) पटियाला से डा० मनमोहन सहगल ने मेरे पास पजाब मे रचित हिन्दी रीति-काव्य' आलेख की टकित प्रति भेजी है। उक्त आलेख मे 20 रचनाओ की (पाण्डुलिपियो की) एक तालिका दी गई है। तालिका के स्पष्टीकरण हेतु लिखा है—

> "पजाब मे रीति ग्रन्थो की एक समृद्ध परम्परा रही है। 19वी से 20वी शती तक पजाब मे ऐसी बहुसख्यक रचनाए है, जिनका वण्य-

> विषय अलकार, छन्द, रस, नायक नायिका भेद आदि से सम्बन्धित है। उपयुक्त सूची मे सभी दुर्लभ लक्षण ग्रन्थ है, जिन्हें पजाब की गुरु-परम्परा के प्रभाव मे रसिक कवियो के गुरुमुखी माध्यम से प्रस्तुत किया था। इन सबकी भाषा साहित्यिक ब्रज है।"113

लिपि भेद के कारण रचनाएँ प्रकाश मे नही आ सकी हैं। साहित्यिक ब्रज—काव्य भाषा कहना चाहिए—रीतिकाल मे इसी तरह और प्रदेशो मे पहुँची है और बहुत-सी रचनाएँ अब तक ज्ञात नही हो सकी हैं। शुक्लजी ने भी सारी रचनाओ को कहाँ स्वीकार किया ? स्वय उनके सामने बहुत-सी रचनाएँ थी। मिश्रबन्धु तथा शिवसिंह सेंगर ने जिन रचनाओ का उल्लेख किया है, वे सब भी शुक्लजी के इतिहास मे नहीं है। सक्षेप मे ब्रजभाषा रीति ग्रन्थो की भाषा के रूप मे फैल गई थी। कवियो को यह भाषा सीखनी पडती थी। सीखने की भाषा होने के कारण ही तो रीति ग्रथो की भाषा हो गई। बोलचाल की भाषा से यह अलग रही। ब्रज का बोल चाल का रूप ब्रजभाषा से सम्बन्धित जिलो मे (मथुरा-आगरा आदि) तो रहा किन्तु अन्यत्र काव्यभाषा का रूप ही रहा। सुदूर के प्रदेशो की ब्रजभाषा पर स्थानीय प्रभाव मिलते हैं। यही नही हिन्दुस्तानी के रूप भी अधिक मिलते है।

रीति-ग्रन्थो की भाषा हो जाने से ब्रजभाषा को शास्त्रीय रूप मिलता है। इसमें अपने लाभ ब्रजभाषा को प्राप्त हुए हैं। रीतिकाल की समाप्ति की घोषणा की तिथि से आगे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक काव्य भाषा के रूप मे ब्रजभाषा इसी लिए प्रतिष्ठित रही है। रीतिकाल के विस्तार का कारण ब्रजभाषा भी है। ब्रज-भाषा की काव्य प्रवृत्तियाँ आधुनिक काल में भी प्राय रीतिकालीन रही हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'उद्धव शतक' काव्य आधुनिककाल मे ब्रजभाषा म ही लिखा है।

9 5 हिन्दवी हिन्दुई हिन्दुस्तानी हिन्दी

मुगल काल म हिन्दवी या हिन्दुई हिन्दुस्तानी कहलाती थी और अग्रेजो के काल म यह हिन्दी हो गई है। खडी बोली—कहना, वस्तुत काव्यभाषा ब्रजभाषा के साथ तुलनात्मक रूप मे हिन्दुस्तानी को प्रस्तुत करना है। खडी बोली का प्रयोग न कर हिन्दुस्तानी तथा हिन्दी कहना अधिक ठीक है। मुगल काल की हिन्दुस्तानी (भक्तिकाल और रीतिकाल की हिन्दुस्तानी कहिए) आधुनिक काल की हिन्दी है। सच्चाई यह है कि ब्रजभाषा और हिन्दुस्तानी बनाम हिन्दी का भेद रीति काल तथा आधुनिककाल का भेद है। शुक्लजी इस भेद से अच्छी तरह परिचित थे। भाषा परिवर्तन के इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को शुक्लजी ने इतिहासकार की दृष्टि से देखा है और इसीलिए उन्होने आधुनिककाल के आरम्भ म भाषा का इतिहास सक्षेप म लिखा भी है। आधुनिककाल के अन्तर्गत आरम्भ म गद्य का

विकास लगभग 46 पृष्ठो मे (पृ० 403 से 448) लिखा है। सवत् 1925-1950 प्रथम उत्थान का काल है। प्रश्न है 1901 सवत से 1925 सवत का क्या ?—इसी को शुक्लजी गद्य साहित्य का आविर्भाव कहते हैं। साहित्य की भाषा मे इस प्रकार का परिवर्तन नई प्रवृत्ति का द्योतक है और इसीलिए रीतिकाल से आधुनिककाल का भेद उन्होंने कर दिया। आधुनिक काल—गद्यकाल हुआ और गद्य की भाषा हिन्दी थी (हिन्दुस्तानी का नया नाम जो आज भी प्रचलित है)

9 6 गद्य और पद्य

आधुनिक काल का नाम शुक्लजी ने गद्यकाल रखा है। इस नामकरण मे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि गद्य की प्रवृत्ति रीतिकाल के साहित्य से एकदम नवीन है। नव जागरण गद्य के माध्यम से आया। नये विचार प्रथमत गद्य मे दिखलाई दिए। व्यावहारिक आवश्यकताओ की पूर्ति गद्य द्वारा होती दिखलाई दी। गद्य का बदलाव सवत् 1900 से पहले ही शुक्लजी ने दिखलाया है। हिन्दी गद्य के प्रथम चार प्रवर्तक (मुशी सदासुखलाल, इशाअल्लाखा, लल्लू लाल जी और सदलमिश्र) सवत् 1860 के आसपास बतलाए गए हैं। आधुनिक काल तो शुक्लजी सवत 1900 से मानते हैं। गद्य का प्रवर्तन वे सवत् 1860 के समय मे ही बतलाते हैं—

> "सवत् 1860 के लगभग हिन्दी गद्य का प्रवर्तन तो हुआ पर उसके साहित्य की अखण्ड परम्परा उस समय से नहीं चली।" "सवत् 1860 और 1915 के बीच का काल गद्य रचना की दृष्टि से प्राय शून्य ही मिलता है। सवत 1914 के बलवे (1857 ई० की क्रान्ति) के पीछे हिन्दी गद्य-गद्य साहित्य की परम्परा अच्छी तरह चली।"[114]

आचार्य शुक्लजी जिस समय इस प्रकार की पक्तियाँ लिख रहे थे—उनके अपने समय तक ब्रजभाषा काव्यभाषा के रूप मे विद्यमान रही है। मिर्जापुर मे आचार्य शुक्ल ने—अपने बचपन मे—ब्रजभाषा को काव्य भाषा के रूप मे देखा भी है। कहते हैं मिर्जापुर मे बदरी नारायण चौधरी प्रेमघनजी के पास एक सज्जन पहुँचे। वे अपनी कन्या के विवाह के निमन्त्रण पत्र पर सस्कृत की जगह हिन्दी मे गद्य चाहते थे। चौधरी साहब ने पद्य की माँग की। शुक्लजी के दोहे का चयन हुआ। दोहा इस प्रकार है—[115]

> 'विश्व विधान-विनोद-रत, माया-जाया-भग।
> मगलमय मगल करहु, दरसावहु-बहु रग॥

बीच मे ही यह प्रसग मैंने इसलिए लिखा है कि पद्य का रूप ब्रजभाषा मे शुक्लजी के समय तक चला है और शुक्लजी स्वय ब्रजभाषा के साहित्यिक सस्कारो मे पले हैं। रीतिकाल को ठीक-ठीक आधुनिक काल मे बदलने का काय शुक्लजी ने ही किया है। व अपने इतिहास मे इस बात को कसे लिख सकते थे ? ब्रजभाषा पद्य

के साथ हिन्दी का रीतिकाल दूर तक खीचा चला आया है। आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल को गद्य के माध्यम से बदला है और इसके लिए संवत 1900 से पीछे तक जाते हैं। 1860 संवत् मे गद्य के उत्तम प्रवत्तन के संकेत देते हैं। तब भी मानते है कि साहित्य का प्रवत्तन बाद मे हुआ। अन्तराल के वर्षों का इतिहास भाषा के इतिहास के रूप मे लिखा। आचार्य शुक्ल के रीतिकालीन विवेचन से कुछ विद्वान नाराज हैं। डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह ने तो इस नाराजगी को व्यक्त करने के लिए पुस्तक ही लिख दी है। इस सन्दर्भ मे यह मानना होता कि रीतिकालीन कवियो के इतिहास-बोध पर आधुनिक सन्दर्भ मे विचार नही हो सका है।

9 7 रीतिकाल इतिहास बोध

आचार्य शुक्ल के इतिहास मे रीतिकालीन कवियो के इतिहास-बोध पर विचार नही हो सका है। इसका एक कारण है और वह यह कि शुक्लजी ने प्रधान रूप से रीति-ग्रंथो से सम्बन्धित कवियों पर ही विचार किया है। रीतिकाल के अन्य कवियो मे घनानन्द और रसखान, आलम [रसखान का नाम कृष्ण भक्ति शाखा मे है फिर भी उसका उल्लेख घनानन्द के साथ भी होता रहा है] जसे कवियो के साहित्य की सराहना उन्होने मुक्तकण्ठ से की है किन्तु ऐसे कवि जिन्होंने ऐतिहासिक पद्धति के काव्य लिखे, उनका विवेचन शुक्लजी ने नही किया। सच तो यह है कि इस काल के कई कवि ऐसे हैं जिन्होंने ऐतिहासिक नायको का इतिहास ठीक ठीक और सामयिक राजनीतिक सन्दर्भों को ध्यान मे रखकर लिखा है। स्वयं केशवदास की रचनाएँ—वीरचरित इस दृष्टि मे महत्वपूर्ण हैं। बात यह है कि शुक्लजी के साहित्य विवेक ने इन रचनाओं की उपेक्षा कर दी। भूषण जसा कवि —रीतिग्रन्थकारो की तालिका म बैठ गया। अंग्रेजो के समय म दरबारी राजनीति से सम्बन्धित काफी साहित्य ब्रजभाषा म है किन्तु साहित्य विचार से बाहर रहने के कारण यह सारा साहित्य प्रकाश म नही आ सका। अंग्रेजो के राज्य विस्तार के समय, मुगलो के पतन के काल म एव मराठा के उत्थान काल म और राजपूत तथा अन्य राजदरबारो म सामयिक रूप म काफी साहित्य पद्य-बद्ध रूप म ब्रजभाषा म रचा गया है। पत्र-व्यवहार की भाषा भी ब्रज तथा राजस्थानी रही है। किन्तु ये सब अब प्रकाश मे आए हैं और शोध ग्रन्थो म शोध-पत्रिकाओं म मिल जाएगे। इन सब से आचार्य शुक्ल परिचित नही हो सके। ब्रजभाषा को उन्होंने काव्यभाषा के रूप म ही अनुभव किया। व्यावहारिक स्तर पर और इतिहास-बोध के रूप म ब्रजभाषा को देखने का अवसर आचार्य शुक्ल को मिला ही नहीं। इस रूप म ब्रजभाषा के साहित्य का ठीक-ठीक अध्ययन होना और उसके ऐतिहासिक स्वरूप पर विचार करना जरूरी है। इस दृष्टिकोण से डॉ० महेन्द्रप्रतापसिंह

की पुस्तक 'रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या'—महत्त्वपूर्ण है। रीतिकालीन साहित्य के अवमूल्यन का एक कारण यह भी है कि रीतिकालीन साहित्य को रीति ग्रन्थकारों के रूप में ही देखा गया है। इस दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है।

9 8 रीतिकाल का विस्तार संवत 1900 के बाद भी

रीतिकाल संवत् 1900 तक ही चला या बाद में भी चलता रहा ? आचार्य शुक्ल ने संवत् 1900 पर ही रीतिकाल के समाप्ति की घोषणा कर दी। किन्तु स्वयं आचार्य शुक्ल के काल में और उनके बचपन में क्या रीतिकाल चरा नहीं रहा था। रीतिकाल का वातावरण आचार्य शुक्ल के चारों ओर था। यह बात विशेष रूप से काव्य शास्त्र के सन्दर्भ में कह रहा हूँ। रीतिकाल का साहित्य विवेक मिश्रबन्धुओं में था। वे तो रीतिकाल को अलकार काल कहते थे। मिश्र बन्धु ही क्यों ? लाला भगवानदीन और अन्य आचार्यगण रस-अलकार की चर्चा रीतिकालीन सन्दर्भ में ही करते थे। डॉ॰ नामवरसिंह ने हैदराबाद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संगोष्ठी के उद्घाटन भाषण में 31-10 85 को कहा कि 'इतना लम्बा रीतिकाल हिन्दी को छोड़कर कहीं नहीं हुआ। इसे दूर करने का श्रेय शुक्लजी को है। आचार्य शुक्ल ने रस को प्रासंगिक बनाया और पारलौकिक आनन्द से मुक्त किया। रस को अलौकिक आनन्द से संघर्ष की ओर मोड़ने का श्रेय भी शुक्लजी को ही देना चाहिए।' डा॰ नामवरसिंह ने तो अभी-अभी कहा है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयीजी ने भी बीसवीं शताब्दी पुस्तक में लिखा है—

> "उन्होंने [आचार्य शुक्ल ने] रस और अलकार शास्त्र को नवीन मनोवैज्ञानिक दीप्ति दी और उन्हें ऊँची मानसिक भूमि पर ला बिठाया। इस प्रकार रस और अलकार बहिष्कृत हो जाने से बचे। दूसरे शब्दों में शुक्लजी ने समीक्षा के भारतीय साँचे को बना रहने दिया।"[116]

कहना यह है कि रीतिकालीन साहित्य विवेक को बदलने का श्रेय आचार्य शुक्ल को है। इस बदलाव से पहले तक रीतिकाल का साहित्य विवेक चला आ रहा था। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर डॉ॰ नामवरसिंह ने टिप्पणी की कि हिन्दी साहित्य में रीतिकाल बहुत दूर तक चला आया है। इस दृष्टि से रीतिकाल के आचार्यों पर शुक्लजी की ऐतिहासिक टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

9 9 आधुनिक गद्य पद्य

आधुनिक काल के गद्य तथा पद्य पर तुलनात्मक रूप में विचार करें और वह भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के सन्दर्भ में तो ज्ञात होगा कि पद्य के क्षेत्र

मे रीतिकाल दूर तक चला है। पहले तो पुरानी धारा [शुक्लजी ने यही नाम दिया है] सवत 1900 से 1925 तक चलती रही है। चलती रही। बाद मे भारतेन्दु काल मे प्रथम उत्थान मे [सवत् 1925 से 1950 तक) भी व्रजभाषा ही पद्य की भाषा रही। द्वितीय उत्थान के समय मे हिन्दी (खडी बोली कहिए) उभर आई। आचाय शुक्ल के समय मे हिन्दी मे पद्य रचनाएँ होने लगी थी। हिन्दी को पद्य का रूप धारण करने मे आधी शताब्दी लग गई कहना चाहिए। इस आधी शताब्दी मे गद्य साहित्य मे नवीनता के दशन हुए। इस तथ्य को शुक्लजी ने आधुनिक काल के इतिहास मे विस्तार से लिखा है। आधुनिक काल को गद्य काल कहने का एक कारण यह भी है।

□□□

10 आधुनिक काल । गद्य-पद्य-उत्थान

10 1 आधुनिक काल का इतिहास लेखन

आचार्य रामचद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है। उक्त इतिहास म सवत् 1900 से सवत् 1980 अर्थात् सन 1843 ई० से 1923 ई० के काल को आचाय शुक्ल न 'आधुनिक काल' कहा है। पयायी रूप मे वे इस काल को गद्य काल भी कहते हैं। हम अनुभव करते हैं कि रीतिकाल तक जिस पद्धति से इतिहास लिखा गया, उससे कुछ हटकर ही आधुनिक काल का इतिहास लिखा गया है। आधुनिक काल का कुछ भाग विशेप रूप से 1901 ई० से 1930 ई०—लगभग तीन दशक—का काल ऐसा है, जिसे शुक्लजी का समसामयिक काल कहना पडेगा। आधुनिक काल के बहुत से साहित्यकारो का परिचय उन्होंने व्यक्तिगत सम्पक के कारण भी दिया है। शुक्लजी के इतिहास मे जिन लेखको या कवियो का उल्लेख हुआ है, उनमे से बहुत-से अब भी जीवित हैं। सक्षेप मे मैं कहना यह चाहता हू कि रीतिकाल तक का इतिहास लिखना और आधुनिक काल का इतिहास लिखना—एक समान नही है। मैं यहां अपने आपको आधुनिक काल तक सीमित रखते हुए शुक्लजी के इतिहास लेखन का विवेचन प्रस्तुत कर रहा हू।

10 2 गद्य खड का स्वरूप

आधुनिक काल के अन्तगत गद्य खण्ड और पद्य खण्ड अलग-अलग किए गए हैं। दोनो ही खण्डो पर अलग-अलग रूपो मे विचार किया गया है। आधुनिक काल को पूरी पुस्तक मे 44 प्रतिशत स्थान मिला है [यह मैं 'काल विभाजन' से सम्बन्धित अध्याय मे लिख चुका हूँ] इस 44 प्रतिशत मे 320 पष्ठ हैं। इन 320 पृष्ठो मे गद्य खण्ड को 174 पृष्ठ मिले हैं। शेष पद्य-खण्ड के 146 पष्ठ हैं। निश्चित ही गद्य ने पद्य से अधिक स्थान लिया है। गद्य खण्ड को पुन अलग-अलग पांच शीपको मे विभाजित किया है —

1 गद्य का विकास (आधुनिक काल के पूर्व गद्य की अवस्था) व्रज भाषा गद्य, खड़ी बोली का गद्य		33 पृष्ठ
2 गद्य साहित्य का आविर्भाव		13 पृष्ठ
3 प्रथम उत्थान (1925 सवत् से 1950 सवत्) सामान्य परिचय		39 पृष्ठ
4 गद्य साहित्य का प्रसार, द्वितीय उत्थान (1950 से 1975 सवत)		
सामान्य परिचय	5 पृष्ठ	
नाटक	4 पृष्ठ	
उपन्यास-कहानियाँ	5 पृष्ठ	
छोटी कहानियाँ	3 पृष्ठ	
निबन्ध	20 पृष्ठ	
समालोचना	7 पृष्ठ	44 पृष्ठ
5 गद्य-साहित्य की वर्तमान गति तृतीय उत्थान (सवत् 1975 से)		
सामान्य परिचय	3 पृष्ठ	
उपन्यास कहानी	8 पृष्ठ	
छोटी कहानियाँ	6 पृष्ठ	
नाटक	10 पृष्ठ	
निबन्ध	3 पृष्ठ	
समालोचना और काव्य-मीमांसा	15 पृष्ठ	45 पृष्ठ
		कुल 174 पृष्ठ

यह विचार करने की बात है कि शुक्लजी ने इतिहास लिखना 1922 23 ई० मे आरम्भ किया था, उस समय द्वितीय उत्थान पूरा हुआ ही था। तीन-चार वर्ष अधिक हुए थे। शुक्लजी के नियम से द्वितीय उत्थान का समय 1893 ई० से 1918 ई० है। शुक्लजी ने अपना लेखन सन् 1927 ई० म पूर्ण किया। अर्थात् उनका इतिहास द्वितीय उत्थान तक की सीमा को ध्यान म रखकर ही लिखा गया है। तृतीय उत्थान तो बाद मे संशोधित परिवर्द्धित संस्करण म जोड़ा गया भाग है। जैसा कि पहले ही कहा गया है—प्रथम संस्करण सन् 1929 ई० म छपा था। अर्थात् ठीक द्वितीय उत्थान के पूर्ण होने पर—एक दशाब्दी बाद म यह लीजिए। संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण सन् 1940 ई० का है। तृतीय उत्थान का वे

सर्वाधिनी, प्रयाग मे हिन्दी-उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य-सभा और काशी मे नागरी-प्रचारिणी सभा का उदय इन्ही दिनो मे हो गया था। सभाओ मे काम करने वाले अनेक व्यक्तियो का उल्लेख शुक्लजी ने किया है और उनकी सेवाओ की सराहना की है। विशेष रूप से नागरी प्रचारिणी सभा का परिचय विस्तृत रूप मे दिया गया है।

10 4 भारतेन्दु युग के सस्कार

यहा पर मैं द्वितीय उत्थान की ओर न बढकर प्रथम उत्थान के सम्बन्ध मे कुछ विशेष तथ्यो की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हू। यह ठीक है कि जिस वर्ष भारतेन्दुजी की मृत्यु हुई थी, उसी वर्ष शुक्लजी का जन्म हुआ था। इस पर भी भारतेन्दु युग के सस्कार शुक्लजी को बाल्यावस्था मे प्राप्त हुए थे। वसे तो उनके हिसाब से प्रथम उत्थान का समय सवत् 1925 से 1950 सवत् तक का है। इन पच्चीस वर्षों को पूरी तरह से भारतेन्दुजी के साथ हम नही जोड सकते। क्योकि भारतेन्दुजी की मृत्यु सवत 1941 म हो गई थी और शुक्लजी का प्रथम उत्थान उसके बाद भी और नौ वर्षों तक चलता रहा है। काल का यह विभाजन शुक्लजी ने लेखक को ध्यान मे रखकर नही, अपितु 25 वर्ष की अवधि (पाव-शतक) या एक पीढ़ी की अवधि को ध्यान मे रखकर किया है। आज तो छठा दशक, सातवा दशक और आठवा दशक के रूप मे हम काल का उल्लेख कर रहे हैं। इमसे लगता है परिवर्तन की गति जितनी तेज हो रही है, काल की अवधि की सीमाए उतनी ही कम हो रही हैं। इसमे कोई सदेह नही कि भविष्य मे हम दशको के स्थान पर पचको तक न उतर आए। अस्तु। मुझे कहना यह है कि भारतेन्दुजी की मृत्यु के बाद सवत 1950 तक—मृत्यु के नौ वर्ष बाद तक—प्रथम उत्थान चलता रहा है और यदि यह सीमा इस रूप म स्वीकार करते हैं तो शुक्लजी को बाल्यावस्था मे भारतेन्दुजी के मण्डल के सस्कार प्राप्त हुए हैं, यह मानना पडेगा। भारतेन्दु युग के जिन लेखको पर शुक्लजी न हिन्दी साहित्य के इतिहास स हटकर—अलग से या स्वतन्त्र रूप से कहिए—लिखा है, उनमे प्रमुख नाम ये हैं—(1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, (2) उपाध्याय प० बदरी नारायण चौधरी, (3) बाबू काशीनाथ खत्री और (4) फ्रेडरिक पिन्काट। इन लेखको से सम्बन्धित लेख-चिन्तामणि भाग 3, म प्रकाशित हो गये हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर एक और लेख चिन्तामणि भाग 1, म भी है। काशीनाथ खत्री पर लेख 1906 ई० म लिखा और यह सरस्वती मे नवम्बर 1906 के अक म प्रकाशित हुआ। शुक्लजी उस समय 22 वर्ष के थे। 1908 ई० म फ्रेडरिक पिन्काट पर लेख लिखा और यह भी सरस्वती म उसी वर्ष प्रकाशित हुआ। भारतेन्दु पर लिखा हुआ लेख 1910 ई० म और प्रेमघन पर सब से बाद म—हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने के बाद

मे—सन् 1931 मे—हस के आत्मकथा विशेषाक मे—प्रकाशित हुआ। मैं यहाँ पर इन लेखो मे क्या लिखा गया है, इसका विवेचन नही करूँगा। मैं कहना यह चाहता हूँ कि द्वितीय उत्थान के लेखको-कवियो की तुलना म शुक्लजी का ध्यान भारते दु-मण्डल के—प्रथम उत्थान के—लेखको-कवियो पर अधिक था। अपनी पूव पीढी के प्रति, जिससे उ होंने सस्कार अर्जित किए, उनके मन मे श्रद्धा-स्नेह का भाव था। इन लेखको से सम्ब धित लेख पढ जाए तो इन लेखो मे वैयक्तिक स्पश भी मिलता है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दू कि अपने निणय मे समीक्षात्मक मूल्याकन मे— शुक्लजी ने अपने साहित्यिक पैमानो का उपयोग यथास्थान ठीक-ठीक रूप मे किया है। उदाहरण के लिए बाबू काशीनाथ खत्री के सम्ब ध मे सरस्वती मे (1906 ई० मे) प्रकाशित लेख और हि दी साहित्य के इतिहास मे उसी लेखक के सम्ब ध मे विवरण और मूल्यांकन देख लें तो ज्ञात हो जाएगा। सरस्वती के लेख मे लेखक का व्यक्तिगत जीवन है, हि दी भाषा सम्ब धी सेवाओ का विवरण है और जीवन मे लब्ध उपलब्धियो, सफलताओ का उल्लेख है। अनुवाद आदि काय की समीक्षा भी है और कुल 23 रचनाओ की तालिका दी है। हि दी साहित्य के इतिहास मे यह सब लिखने के लिए जगह नही। इतिहास मे रचनाओ के सम्ब ध म लिखा—

> "शुद्ध साहित्य कोटि मे आनेवाली रचनाए, इनकी बहुत कम हैं। ये तीन पुस्तकें उल्लेख योग्य हैं—(1) ग्राम पाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक, (2) तीन ऐतिहासिक नाटक (?) रूपक (3) बाल विधवा सताप नाटक।"[117]

इतिहास मे वैयक्तिक परिचय भी कम है।

10 5 फ्रेडरिक पि काट

फ्रेडरिक पि काट पर लेख ही नही लिखा, वह तो विस्तार से लिखा ही गया है (सरस्वती 1908) इसके साथ-साथ इतिहास में भी काफी जगह दी है। इतिहास मे इनके लिए दो पृष्ठ दिये हैं। भारत से बाहर रहकर हि दी के लिए उ होंने जो काय किया है उसका विस्तत विवरण पि काट साहब के पत्रो के आधार पर दिया गया है। 'बालदीपक' और 'विक्टोरिया चरित्र'—उनकी पुस्तकें हैं। पिन्काट साहब पर शुक्ल जी ने जो कुछ लिखा है, उससे पता लगता है कि शुक्ल जी हि दी को विदेश मे मा यता मिलने से प्रस न थे।

10 6 बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन

भारते दु मण्डल के दो लेखक तो ऐसे हैं, जिनके साथ शुक्लजी का वैयक्तिक सम्पक रहा है। उनमे उपाध्याय प० बदरीनारायण प्रेमघन का नाम विशेष

उल्लेखनीय है। मिर्जापुर मे शुक्लजी का सम्पर्क प्रेमघन जी से हुआ। भारतेन्दु मण्डल के सस्कार वास्तव मे शुक्लजी को अपने पिता चन्द्रवली पण्डेय से और प्रेमघन जी से प्राप्त हुए हैं। इस के आत्मकथा अश मे 1931 ई० म 'प्रेमघन की छाया स्मृति' लेख छपा है। लेख आत्मकथा की शैली मे ही लिखा गया है। बचपन के साहित्यिक सस्कारो की छाया इस लेख मे है। प्रधान रूप से पिता को और पिता के ब्याज से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रति अपने आकर्षण के कारण शुक्लजी ने दिये हैं और दूसरे भारतेन्दु मण्डल के एक प्रधान स्तम्भ जिनके सम्पर्क मे शुक्लजी आए, उनका सजीव स्मृति रूप मे रेखाकन भी प्रस्तुत किया है। लेख अमूनपूर्व है। चन्द्रशेखर शुक्ल ने इस सम्बन्ध मे और भी विस्तार से लिखा है किन्तु शुक्लजी के अपने अनुभव उनके शब्दो मे पढना और बात है। शुक्लजी ने इतिहास लिखते समय अपने अनुभवो को व्यक्त करते समय सयम रखा और विषय के साथ अपने वैयक्तिक अनुभव को—वैयक्तिक सम्पर्क के अनुभव को—जोडकर लिखा। इतिहास म लिखा है—

> "किसी बात को साधारण ढग से कह जाने को ही वे लिखना नही कहते थे। कोई लेख लिखकर जब तक कई बार उसका परिष्कार और मार्जन नही कर लेते थे तब तक छपने नही देते थे। भारतेन्दु के वे घनिष्ट मित्र थे पर लिखने मे उनके 'उतावलेपन' की शिकायत अक्सर किया करते थे। वे कहते थे बाबू हरिश्चन्द्र अपनी उमग से जो कुछ लिख जाते थे उसे यदि एक बार और देखकर परिमार्जित कर लिया करते तो वह और भी सुडौल और सुन्दर हो जाता। एक बार उन्होने मुझसे काग्रेस के दो दल हो जाने पर एक नोट लिखने को कहा। मैंने जब लिखकर दिया तब उसके किसी वाक्य को पढकर वे कहने लगे कि इसको यो कर दीजिए—'दोनो दलो की दलादली मे दलपति का विचार भी दल-दल मे फस रहा।' भाषा अनुप्रासमयी और चुहचुहाती होने पर भी उनका पद विन्यास व्यर्थ आडम्बर के रूप मे नही होता था। उनके लेख अर्थगर्भित और सूक्ष्म-विचारपूर्ण होते थे। लखनऊ की उर्दू का जो आदर्श था वही उनकी हिन्दी का था।"[118]

10 7 बालकृष्ण भट्ट

बालकृष्ण भट्ट के साथ के अनुभव को व्यक्त करते हुए शुक्लजी अपने इतिहास म लिखते है —

> एक बार वे मेरे घर पधारे थे। मेरा छोटा भाई आखो पर हाथ रखे उन्हे दिखाई पडा। उन्होने पूछा भया। आँख मे क्या हुआ? उत्तर

मिला—'आँख आई है।' वे झट बोल उठे—'यह आँख बड़ी बला है, इसका आना, जाना, उठना, बैठना सब बुरा है।' अनेक विषयों पर गद्य प्रबन्ध लिखने के अतिरिक्त 'हिन्दी प्रदीप' द्वारा भट्टजी संस्कृत-साहित्य और संस्कृत के कवियों का परिचय भी अपने पाठकों को समय-समय पर कराते रहे। पंडित प्रताप नारायण मिश्र और पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य-साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य-साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।[119]

10 8 प्रथम उत्थान की जिन्दादिली

प्रथम उत्थान का अन्तिम अनुच्छेद बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। विषय को समेटते हुए ही लिखा गया है किन्तु इसमें प्रथम उत्थान की जिन्दादिली का विशेष उल्लेख है—

"नूतन हिन्दी साहित्य का वह प्रथम उत्थान कैसा हँसता खेलता सामने आया था, भारतेन्दु के सहयोगी लेखकों का वह मण्डल जिस जोश और जिंदादिली के साथ और कैसी चहल पहल के बीच अपना काम कर गया, इसका उल्लेख हो चुका है भारतेन्दु जी के सहयोगी अपने ढर्रे पर कुछ लिखते तो जा रहे थे, पर उनमें वह तत्परता और वह उत्साह नहीं रह गया था। हरिश्चन्द्र के गोलोकवास के कुछ आगे पीछे जिन लोगों ने साहित्य सेवा ग्रहण की थी वे ही अब प्रौढ़ता प्राप्त करके काल की गति परखते हुए अपने कार्य में तत्पर दिखाई देते थे। उनके अतिरिक्त कुछ नए लोग भी मैदान में धीरे धीरे उतर रहे थे। यह नवीन हिन्दी साहित्य का द्वितीय उत्थान था जिसके आरम्भ में 'सरस्वती' पत्रिका के दर्शन हुए।"[120]

10 9 पुरानी धारा नई धारा

द्वितीय उत्थान पर कुछ लिखने से पूर्व पद्य खण्ड के प्रथम उत्थान के साथ तुलना करना आवश्यक समझता हूँ। काव्य खण्ड को शुक्ल जी ने दो नामों में विभाजित किया है—(1) पुरानी धारा और (2) नई धारा। नई धारा के फिर तीन उत्थान दिखलाये गये हैं। ग्यारह पृष्ठों में पुरानी धारा का परिचय दिया है और प्रथम उत्थान के लिए कुल बारह पृष्ठ दिए हैं। 23 पृष्ठों में प्रथम उत्थान तक का पूरा इतिहास लिख दिया गया है। गद्य से तुलना करें। प्रथम उत्थान के समापन तक 85 पृष्ठ दिए गये हैं। पुरानी धारा एक प्रकार से रीतिकाल से चली आती हुई धारा है। रीतिकाल को शुक्लजी ने तीन प्रकरणों में अलग-अलग रूप में लिखा है। इसमें प्रथम प्रकरण रीतिकाल के सामान्य परिचय से सम्बन्धित है।

दूसरा प्रकरण रीति-ग्रंथकार कवियो से सम्बन्धित है। दूसरे प्रकरण मे जिन कवियो का परिचय दिया गया है, वे सब लक्षण ग्रन्थ लिखने वाले—रीति-ग्रंथकार कहना चाहिए—कवि हैं, रीतिकाल के शेष कवियो को शुक्लजी रीतिकाल के अन्य कवि कहते हैं। आधुनिक काल की पुरानी धारा का सम्बन्ध रीतिकाल के अन्य कवियो से ही है ।पुरानी धारा के आरम्भ मे ही शुक्लजी लिखते हैं—

> "ब्रजभाषा काव्य की परम्परा गुजरात से लेकर बिहार तक और कुमाऊँ, गढवाल से लेकर दक्षिण भारत की सीमा तक बराबर चलती आई है। कश्मीर के किसी ग्राम के रहने वाले ब्रजभाषा के एक कवि का परिचय हमे जम्बू के किसी महाशय ने दिया था और शायद उनके दो एक सवैये भी सुनाये थे।"[121]

इन पंक्तियो को उद्धृत करने का कारण यह है कि ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप मे भौगोलिक विस्तार पा चुकी थी। रीतिकाल के अन्य कवि से लेकर पुरानी धारा तक के कवियो का सम्यक् विवेचन साहित्य के इतिहास मे अलग रूप से होना चाहिए। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी और भौगोलिक व्यक्ति के सन्दर्भ मे शुक्लजी ने अपने इतिहास में सकेत तो दे दिए हैं किन्तु उनका पल्लवन विवेचन नहीं हुआ है।

10 10 पुरानी धारा के कवि

पुरानी धारा के जिन कवियो का उल्लेख शुक्लजी ने किया है, वे हैं—गढ़-वाल के मोलाराम, सेवक, महाराज रघुराज सिंह रीवा-नरेश, सरदार, बाबा रघुनाथदास रामसनेही, ललित किशोरी, राजा लक्ष्मण सिंह, लछराम (ब्रह्म भट्ट) गोविंद गिल्लाभाई, और नवीन चौबे। इसके बाद शुक्लजी ने, भारतेन्दु ने जो कविसमाज स्थापित किया था, उसका परिचय दिया है। इसमे प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरी-नारायण (प्रेमघनजी), ठाकुर जगमोहन सिंह, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास लाला सीताराम आदि का साहित्यिक परिचय दिया है। खडी बोली के दो कवियो का उल्लेख भी पुरानी धारा के कवियो मे हो गया है क्याकि वे दोनो भी पहले ब्रजभाषा म लिखते रहे है—अयोध्यासिंह उपाध्याय और श्रीधर पाठक। इसी सन्दर्भ मे इस धारा के अन्तर्गत दो तीन नाम और प्रमुख है—जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राय देवीप्रसाद पूर्ण और वियोगी हरि। इन तीनो का परिचय शुक्लजी ने विस्तार के साथ दिया है। इनमें से वियोगीहरि तो आज भी वर्तमान हैं। उनसे बात करें तो अपने युग की चेतना को आज भी मुखरित करते प्रतीत होते हैं। प्रथम उत्थान मे कविता की भाषा का बदलाव नहीं दिखाई देता। कुछ विषय बदले हैं। कविता ब्रजभाषा मे ही लिखी जाती रही है। पुरानी धारा मे भारतेन्दु मण्डल के कुछ कवियो का उल्लेख हो गया था।

उनका यहाँ पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ-साथ विस्तृत परिचय दिया गया है। कविता के विषय लोक हित, समाज-सुधार मातृभाषा के उद्धार और सबसे अधिक देशभक्त रहे हैं। विषयो के साथ-साथ कविता के विधान का परिचय भी शुक्लजी ने दिया है। लिखा है—

> "नवीनधारा के आरम्भ मे छोटे-छोटे पद्यात्मक निबन्धो की परम्परा भी चली जो प्रथम काल के उत्थान काल के भीतर तो बहुत कुछ भाव प्रधान रही, पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृतात्मक [मैटर ऑफ फैक्टस] होने लगी।"[122]

पुरानी धारा मे जो नाम भारतेन्दु-मण्डल के साथ आए थे उनका परिचय विस्तार से नई धारा के प्रथम उत्थान मे दिया है। विशेष रूप से लावनीबाजो का उल्लेख यहाँ नया है। 'तुकन गिरि गोसाइ' और उनके दो शिष्य 'रिसाली गिरि और 'देवीसिंह' का नाम कलगी तुर्रे के सदभ मे दिया है। प्रथम उत्थान के अन्त मे खडी बोली की कविता की आवाज उठने लगी थी और उनमे प्रमुख नाम अयोध्याप्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक आदि हैं।

10 11 भारतेन्दु युग गद्य पद्य

सच देखा जाय तो प्रथम उत्थान तक के इतिहास को एक प्रकार से साहित्य का इतिहास कहने की अपेक्षा भाषा का इतिहास कहना अधिक उचित होगा। शुक्ल जी ने अनजाने मे ही प्रथम युग को भारतेन्दु युग बना दिया है। गद्य हो या पद्य दोनो ही स्थानो पर भारतेन्दु छाये हुए लगते हैं। हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य की सेवा करनेवालो का यह इतिहास अधिक है और ठीक साहित्य के विकास के रूप मे इसे प्राथमिक तैयारी का रूप ही कहना अधिक उचित जान पडता है। गद्य और पद्य दोनो मे काम करने वाला मण्डल भारतेन्दु मण्डल था। गद्य-पद्य के विभाजन के कारण दोनो ही स्थानो पर उनका परिचय अलग-अलग देना पडा है। गद्य मे खडी बोली ने आसन जमा लिया था और पद्य के क्षेत्र मे अब भी ब्रज भाषा चल रही थी।

10 12 द्वितीय उत्थान शुक्लजी का समसामयिक युग

द्वितीय उत्थान पर लिखने से पूर्व मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हू कि यह शुक्लजी का समसामयिक युग है। शुक्लजी स्वय इस युग की देन हैं। भारतेन्दुयुग की अपेक्षा द्विवेदी युग के लेखक आज अधिक वर्तमान हैं। शुक्लजी स्वय भारतेन्दु युग के संस्कारो से प्रभावित हैं। भारतेन्दु युग के प्रति उनके मन मे आदर और श्रद्धा का भाव है। भारतेन्दु युग के लेखको-कवियो पर जैसे शुक्लजी ने अलग से लेख लिखे हैं और वे सरस्वती, हस आदि पत्रिकाओ मे छपे हैं, वसे द्वितीय उत्थान

के लेखकों-कवियों पर शुक्लजी ने अलग से लेख नहीं लिखे हैं। वियोगीहरि की हरितोषिणी टीका (विनयपत्रिका की) का परिचय उन्होंने अवश्य दिया और महाराजकुमार रघुवीर सिंह की 'शेष स्मृतियां' पुस्तक की प्रवेशिका भी लिखी (ये दोनों लेख आज भी वर्तमान हैं)। इनमें से वियोगी हरि का परिचय शुक्लजी ने प्रथम उत्थान में ही दिया है। महाराजकुमार रघुवीर सिंह का परिचय तृतीय उत्थान में दिया है। इन दोनों को छोडकर फुटकल रूप में शुक्लजी ने जो कुछ लिखा है—द्वितीय उत्थान तथा तृतीय उत्थान के लेखकों-कवियों पर—वह सब इतिहास में ही है।

10 13 गद्य खण्ड द्वितीय उत्थान

प्रथम उत्थान को शुक्लजी गद्य साहित्य परम्परा का प्रवर्तन कहते हैं, जबकि द्वितीय उत्थान को वे गद्य साहित्य का प्रसार कहते हैं। इस उत्थान के लिए 44 पृष्ठ दिये गये हैं। सामान्य परिचय (5) के अलावा, गद्य के विविध रूपों के अलग अलग शीर्षक भी यहाँ मिल जाते हैं—नाटक (4), उपन्यास कहानियां (5) छोटी कहानियाँ (3) निबन्ध (20) और समालोचना (7) कुल 44 पृष्ठों का यह विभाजन है। सबसे अधिक स्थान निबन्ध को दिया गया है। सामान्य परिचय में प्रधान बात भाषा के स्वरूप निर्धारण की है। सामान्य परिचय के अन्त में जीवन चरित्र से सम्बन्धित चार चरित्रों का उल्लेख किया और बाद में विधाओं में पर अलग-अलग लिखा। इस उत्थान में समय में अनुवाद बहुत हुए। बंग भाषा से अंग्रेजी से नाटकों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं। कुछ नाटक संस्कृत से भी अनूदित हुए हैं। मौलिक नाटक के लिए हुए कुछ प्रयासों का उल्लेख शुक्लजी ने किया है। उपन्यास-कहानियों का यह युग अनुवादों का युग ही है। गोपालराम गहमर के जासूसी उपन्यास और देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों का यह युग है। एक और प्रधान नाम प० किशोरीलाल गोस्वामी का है। उपाध्यायजी हरिऔध तथा लज्जाराम मेहता के कुछ उपन्यासों का उल्लेख करते हुए भी शुक्लजी लिखते हैं कि इनमें से एक तो कवि हैं और दूसरे अखबार नवीस। बाबू ब्रजनंदन सहाय के दो नए भाव प्रधान उपन्यासों का उल्लेख शुक्लजी ने किया है। छोटी कहानियों का परिचय देते समय पहले कहानी की साहित्यिक बानगी का रूप बतलाते हैं। शुक्लजी मानते हैं कि किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी मौलिक है और उसके बाद और भी कहानियां पत्र पत्रिकाओं में छपने लगीं। छ मौलिक कहानियों की तालिका भी दी है, जिसमें स्वयं शुक्लजी की भी एक कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' है। इसके बाद तो जयशंकर प्रसाद, प० विश्वम्भर नाथ कौशिक, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, प० ज्वालादत्त शर्मा के नाम भी आगे आये। विशेष नाम चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का आता है, जिसकी प्रसिद्ध कहानी

उसने कहा था है। यह सारा विवरण प्रेमचन्दजी के आगमन से पूर्व का है। प्रेमचन्दजी का उल्लेख करते हुए कहानी का विवरण समाप्त हो गया है। निबन्ध के लिए सबसे अधिक पृष्ठ दिये गये हैं और उनमे भी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का उल्लेख विशेष रूप से करना चाहिए। निबन्ध विधा का महत्त्व ज्ञापित करते हुए निबन्ध की सामान्य विशेषताएँ पहले बतलाई गई हैं, भारतेन्दु काल के निबन्धों और इस युग के निबन्धो के स्वरूप को अलगाते हुए प्रमुख निबन्धकारो का परिचय विस्तार से दिया है। महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के अतिरिक्त जिन निबन्धकारो का उल्लेख किया गया है, वे हैं—प० माधव प्रसाद मिश्र, बाबू गोपालराम गहमर, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, प० गोविंद नारायण मिश्र, बाबू श्यामसुन्दरदास जी प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी और अध्यापक पूर्णसिह। शुक्लजी ने निबन्धकारो का परिचय देते समय निबन्धो के लम्बे-लम्बे उद्धरण भी दिये हैं। इस तरह के उद्धरण नाटक, उपन्यास-कहानी तथा छोटी कहानियो मे नही दिये गये हैं। समालोचना के विभिन्न रूपो का परिचय देते हुए गुण-दोषो से आरम्भ कर तुलनात्मक समीक्षा का विवेचन किया है। द्विवेदीजी की समीक्षाओ के उपरान्त मिश्रबन्धुओ, पण्डित पद्मसिह शर्मा और पण्डित कृष्णविहारी की समीक्षाओ के विवरण के साथ द्वितीय उत्थान का गद्यकाल पूर्ण हुआ है।

10 14 पद्य खण्ड द्वितीय उत्थान

काव्य खड—नई धारा, द्वितीय उत्थान का आरम्भ प० श्रीधर पाठक के प्रसग से किया है। खडी बोली अब कविता के उपयुक्त मान ली जा रही थी। आधुनिक काल मे प्रथमत शुक्लजी किसी वाद का उल्लेख करते हैं और यूरोप की साहित्यिक प्रवृत्तियो के सन्दर्भ मे हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियो का विवेचन करने लगते हैं। शुक्लजी रोमाटिसिज्म के लिए स्वच्छदतावाद शब्द का प्रयोग करते हैं। यह प्रवृत्ति उन्हें सब से पहले प० श्रीधर पाठक मे दिखलाई देती है। एकातवासी योगी काव्य का परिचय इसी सदर्भ मे दिया है। यह प्रवृत्ति आगे चल नही पाई, इस बात पर शुक्लजी खेद भी व्यक्त करते हैं। प० महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से हिन्दी मे परम्परा से चले आए छदो के स्थान पर सस्कृत के वृत्तो का चलन बढा। द्विवेदीजी की बोलचाल की भाषा के आग्रह के कारण इतिवृत्तात्मक कविता अधिक लिखी जाने लगी। लगता है, शुक्लजी द्विवेदीजी के काव्य-क्षेत्र मे प्रभाव से बहुत सतुष्ट नही थे। लिखा है—

> 'द्विवेदीजी सरस्वती पत्रिका द्वारा बराबर कविता म बोलचाल की सीधी सादी भाषा का आग्रह करते जिससे इतिवृत्तात्मक (मटर आफ फैक्ट) पद्यो का खडी बोली मे ढेर लगने लगा। यह हुई द्वितीय उत्थान के भीतर की बात।"[123]

(प० 604) शुक्लजी चाहते थे कि स्वच्छदतावाद का कविता मे प्रस्फुटन होना चाहिए। श्रीधर पाठक के बाद उन्हे कोई दूसरा कवि इस प्रकार का नही मिला। गीताजंलि के प्रभाव से बाद म कवियो ने इतिवृत्तात्मकता को छोडा—तृतीय उत्थान म—किन्तु शुक्लजी का कहना है कि कविता फिर बिदशी अनुकृतिया की ओर बढने लगी। स्वच्छदतावाद का रूप आगे नही चल सका। द्वितीय उत्थान के शुक्लजी ने वैसे ही दो भाग कर दिए। द्विवेदी-मडल के कवि और द्विवेदी मडल के बाहर के कवि। द्विवेदी मडल के कवियो के नाम इस प्रकार है—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, स्वय महावीर प्रसाद द्विवेदी, प० सरयूप्रसाद मिश्र, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, प० रामचरित उपाध्याय प० लोचनप्रसाद पाण्डेय और प० गिरिधर शर्मा नवरत्न। इसी तरह द्विवेदी-मडल के बाहर के कवियो म राय देवी प्रसाद पूर्ण, प० नाथूराम शकर शर्मा, प० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, प० रामनरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन, पडित रूप नारायण पाण्डेय और पडित सत्यनारायण कविरत्न हैं। इन कवियो की विशेपता बतलाते हुए शुक्लजी लिखते हैं —

> "इन कवियो म से अधिकाश तो दो रगी कवि थ जो व्रज भाषा म तो शृगार, वीर, भक्ति आदि की पुरानी परिपाटी की कविता कवित्त-सवयो या गेय पदो मे करते आते थे और खडी बोली म नूतन विषयो को लेकर चलते थे। बात यह थी कि खडी बोली का प्रचार बराबर बढता दिखाई दता था और काव्य के प्रवाह के लिए कुछ नई भूमिया भी दिखाई पडती थी।"[124]

केवल रामनरेश त्रिपाठी मे जीवन की गूढ, मार्मिक या रमणीय व्यजना शुक्लजी को मिली।

10 15 गद्य-खण्ड ततीय उत्थान

तृतीय उत्थान को शुक्लजी 'गद्य साहित्य की वतमान गति' कहत ह। इसका आरम्भ सवत 1975 अर्थात 1918 ई० के बाद मानना चाहिए। सन 1940 ई० मे शुक्लजी ने इस उत्थान की सामग्री मे सशोधन परिवधन किया है। अत इस सामग्री का काल 20/21 वर्षों मे फैला हुआ है। ततीय उत्थान के दूसरे ही अनुच्छेद मे शुक्लजी लिखते है —

> "इन बीस इक्कीस वर्षो के बीच हिन्दी साहित्य का मदान काम करने वालो से पूरा-पूरा भर गया, जिससे इसके कई अगो की बहुत अच्छी पूर्ति हुई पर साथ ही बहुत सी फालतू चीजें भी इधर उधर बिखरी।[125]

सन 1940 इ० के सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण म 'दो बातें' शीर्षक के अन्तगत शुक्लजी लिखते हैं —

"पिछले संस्करणो मे वतमान अथात आजकल चलते हुए साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियो का सकेत मात्र करके छोड दिया गया था। इस संस्करण मे समसामयिक साहित्य का अब तक आलोचनात्मक विवरण दे दिया गया है। जिससे आज तक के साहित्य की गतिविधि का पूरा परिचय प्राप्त होगा।"[126]

द्वितीय उत्थान के नम से ततीय उत्थान का क्रम बदला हुआ है। सामान्य परिचय (3), उपन्यास-कहानी (8), छोटी कहानिया (6) नाटक (10) निबन्ध (3) तथा समालोचना और काव्य मीमासा (15) इस क्रम मे यह इतिहास लिखा हुआ है। ततीय उत्थान मे शुक्लजी को निबन्धकार मिले ही नही। द्वितीय उत्थान म निबन्ध विधा को जहा 20 पष्ठ दिए गए थे, वहा इस समय केवल 3 पष्ठो मे काम हो गया है। गीताजलि की पद्धति के कुछ निबन्ध सग्रह निकले, जिनम राय कृष्णदासजी की 'साधना', प्रवाल और 'छायापथ' वियोगीहरिजी का 'भावना और अन्तर्नाद', मवरमल सिंघी का 'वेदना' आदि। ये सब आध्यात्मिक निबध हैं। प्रत्यभिज्ञा के रूप मे मुगलकालीन भावनाओ को व्याख्यात्मक गद्य के रूप मे निबध लिखने वाले महाराजकुमार रघुवीरसिह को भी तृतीय उत्थान का निबन्धकार मानते हैं। निबन्धो मे लेखको की विशेष गति न देखकर वे साफ कहते हैं कि घोर विचार शैथिल्य है और बुद्धि के आलस्य फलने की आशका है। तृतीय उत्थान मे प्राथमिक स्थान उपन्यास कहानी को दिया है। वे मानते हैं कि वतमान जगत मे उपन्यासो की शक्ति बडी है। प्रेमचन्दजी, प० विश्वम्भरनाथ कौशिक, बाबू प्रतापनारायण श्रीवास्तव, श्री जैनेन्द्रकुमार आदि न सामाजिक उपन्यास लिखे है और वृदावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचन्द के गबन उपन्यास, भगवती चरण वर्मा के चित्रलेखा, वदावनलाल वर्मा के गढकुडार और विराटा की पद्मिनी की विशेष चर्चा शुक्लजी ने की है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे सन् 1910 ई० म शुक्लजी ने उपन्यास शीर्षक एक लेख भी लिखा है। इसम उन्होन उपन्यास के महत्व को नापित किया है। ऐतिहासिक उपन्यास अधिक नही लिखे गये। शुक्लजी चाहते थे कि जयशकर प्रसाद ने जसे इतिहास का आधार बनाकर नाटक लिखे, वस ही उपन्यास भी लिखें। इस सम्बन्ध मे लिखा है "

"इसी पद्धति पर (अर्थात ऐतिहासिक पद्धति पर) उपन्यास लिखने का अनुरोध हमने उनसे एक बार किया था जिसके अनुसार शुगकाल —पुष्यमित्र अग्निमित्र का समय—का चित्र उपस्थित करने वाला एक वडा मनोहर उपन्यास लिखन म उन्होंने हाथ भी लगाया था, पर हमारे साहित्य के दुर्भाग्य से उसे अधूरा छोडकर ही चल बसे।"[126]

स्वय शुक्लजी ने राखालदास बद्योपाध्याय के उपन्यास 'शशाक' का हिन्दी अनुवाद किया था। इसकी भूमिका अब चितामणि भाग 3 म छप गई है। भूमिका मे

'ऐतिहासिक खोज से और तदनुसार अनुवाद मे शुक्लजी ने जो परिवतन परिवद्धन किया है, उसके कारण भी दिए हैं। शुक्लजी की पत्नी विदुषी थीं। उन्होंने भी एक प्रेम उपन्यास '[illegible]' का हिन्दी अनुवाद किया था और इसकी भूमिका भी शुक्लजी ने लिखी।[127] मैं कहना चाहता हूँ कि शुक्लजी ऐतिहासिक उपन्यासो के पक्ष मे थे और जो कोई इस तरह का काम कर रहा था, उसकी सराहना करते थे। इतिहास मे उन्होंने उपन्यास के तत्वो पर भी व्यावहारिक रूप मे विचार किया और उनके अपने समय तक जितने तकनीकी रूप हो सकते थे, उन रूपो की सोदाहरण विशेषतायें बतलाईं। कहानी साहित्य पर लिखा तो बहुत सक्षेप मे है, पर वह सब विषय-वस्तु के अनुसार और तकनीकी विशेषताएँ बतलाते हुए लिखा है। हर प्रकार की विशेषता बतलाते समय उसके लिए उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। जैसे उपन्यासो निबन्धो आदि का विवेचन करते समय सामान्य प्रवृत्तियाँ लिखने के बाद प्रधान उपन्यासकारो या निबन्धकारो का परिचय देते रहे हैं, वैसे किसी कहानीकार विशेष का परिचय अलग से शुक्लजी ने नही दिया। क्योंकि जो कहानियां लिख रहे थे उनकी गति और-और विधाओ मे भी रही हैं। अत व्यक्ति रूप मे उनका उल्लेख उन-उन विधाओ मे किया गया है। नाटकों मे भारतेन्दु के उल्लेख के साथ जयशकर प्रसाद के नाटको का विस्तृत विवेचन आरम्भ मे किया है। प्रसाद के साथ-साथ हरिकृष्ण प्रेमी का नाम भी आया है। प्रसाद के नाटको का स्वतन्त्र विवेचन किया है। नाटको के विवरण मे 1/3 भाग प्रसाद ने ले लिया है। शेष भाग मे और सब हैं। अन्य नाटककारो मे हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पन्त, प० लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशकर भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, सुमित्रानन्दन पन्त, कैलासनाथ भटनागर हैं। एकाकी नाटक मे *'आधुनिक एकाकी नाटक'* सग्रह का उल्लेख करते हुए उसके लेखको के नाम दिए है—सुदर्शन, रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, धर्मप्रकाश आनन्द और उदयशकर भट्ट। कुछ अनुवादो का भी अन्त मे उल्लेख किया है। अन्त मे समालोचना और काव्य मीमासा है। ततीय उत्थान मे सबसे अधिक पष्ठ काव्य-मीमासा तथा समालोचना को ही दिए गए हैं। पद्य खड के ततीय उत्थान के बाद ही इस पर विचार करना उचित होगा।

10 16 पद्य खण्ड का स्वरूप

आधुनिक काल गद्य-खड का सर्वेक्षण ऊपर प्रस्तुत कर दिया गया है। पद्य खड पर विचार करने से पहले हम तालिका देखें—

पुरानी धारा 11 पष्ठ प्रथम उत्थान, 12 पष्ठ, द्वितीय उत्थान 39 पृष्ठ और तृतीय उत्थान 84 पष्ठ—कुल 146 पष्ठ।

इस तालिका के साथ गद्य-खड की तालिका देखनी चाहिए। गद्य-खड के कुल 174

पृष्ठों में 46 पृष्ठ भाषा का इतिहास लिखने में गये, प्रथम उत्थान से तृतीय उत्थान के लिए क्रमश 39, 44 तथा 45 पृष्ठ ही दिए जा सके हैं—कुल 128 पृष्ठ होते हैं। इसी तरह पद्य-खड की पुरानी धारा के ग्यारह पृष्ठ छोड दें, तो तीनों उत्थानों के लिए कुल 12, 39 और 84—कुल 135 पृष्ठ होते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा के इतिहास को अलग से छोड दें तो गद्य की तुलना में पद्य को भी लगभग समान स्थान मिला है। पद्य के पृष्ठ कुछ अधिक ही आएँगे। गद्य के 128 और पद्य के 134 होते हैं। और फिर इसमें पुरानी धारा के ग्यारह पृष्ठ जोड दें तो पृष्ठ सख्या 146 हो जाती है। पद्य-खड में भाषा का इतिहास लगभग नहीं है। गद्य खड के तो प्रथम तथा द्वितीय उत्थान में भी भाषा का इतिहास किसी-न किसी रूप में मिल जाता है। गद्य खड का ठीक साहित्यिक विवेचन हम तृतीय उत्थान में ही मिलता है। इस तुलना में पद्य-खड में साहित्यिक विवेचन आरम्भ से ही मिलता है।

10 17 'गद्यकाल' नामकरण उचित है

हम तृतीय उत्थान को छोड दें और केवल द्वितीय उत्थान तक की बात कर तो आधुनिक काल को गद्य काल कहना ठीक लग सकता है। शुक्लजी ने जब इतिहास लिखना आरम्भ किया था, उस समय द्वितीय उत्थान तक ही सोचा जा सकता था और द्वितीय उत्थान तक की सामग्री में गद्य-साहित्य में ही नवीनता थी। पद्य-साहित्य के विषय पुरानी परिपाटी के थे और भाषा भी ब्रजभाषा के सस्कारों से प्रभावित थी। इस नाते साहित्य में आधुनिकता की खोज—नये नये विषयों की और प्रवृत्तियों की खोज—प्राय गद्य में ही दिखलाई दे रही थी और इस नाते उस समय शुक्लजी ने आधुनिक काल को गद्य काल कह दिया तो उनके औसतवाद में यह बात बैठती हुई भी लगती है।

10 18 पद्य खण्ड तृतीय उत्थान

शुक्लजी द्वारा ही लिखित तृतीय उत्थान हमें इस बात के लिए विवश करता है कि साहित्य की केन्द्रीय विधा कविता को ही मानना चाहिए और फिर केवल आधुनिक काल और गद्य-काल जैसे नाम आगे उपयुक्त नहीं होंगे। द्वितीय उत्थान तक तो शुक्लजी की बात ठीक मान लें। तृतीय उत्थान की उसकी ही [illegible] कहती है कि आधुनिक काल को मात्र गद्य-काल कहना ठीक नहीं है। [illegible] तृतीय उत्थान की तुलना में पद्य-खड के तृतीय उत्थान को पृष्ठ अधिक [illegible] हैं। गद्य खड के तृतीय उत्थान को 45 पृष्ठ दिए गए हैं, [illegible] तृतीय उत्थान को 84 पृष्ठ दिए गए हैं। विवरण इस प्रकार है

सामान्य परिचय 21 पृष्ठ,
ब्रजभाषा काव्य परम्परा 1 पृष्ठ।
द्विवेदी-काल मे खड़ी बोली की काव्य धारा 6 पृष्ठ

छायावाद

सामान्य परिचय	11 पृष्ठ
जयशंकर प्रसाद	16 पृष्ठ
सुमित्रानन्दन पंत	21 पृष्ठ
सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	5 पृष्ठ
महादेवी वर्मा	1 पृष्ठ
छायावाद को कुल	54 पृष्ठ
स्वच्छंद धारा	2 पृष्ठ
कुल	84 पृष्ठ

तृतीय उत्थान की नई धारा के साथ साथ गद्यखंड के समालोचना और काव्य मीमांसा वाले अंश पर विचार करना अभी बाकी है। लगता है इस सामग्री का बहुत सा भाग सन 1929 के प्रथम संस्करण मे नही रहा होगा। जिस समय शुक्ल जी ने (1921-1922 ई०) इतिहास लिखना आरम्भ किया, उस समय द्वितीय उत्थान को पूरे हुए दो तीन वर्ष ही हुए थे। यह ठीक है कि द्वितीय उत्थान 1918 ई० तक ही रहा है किन्तु लिखते समय कम से कम हम पाच वर्ष तो पीछे की सामग्री पर विचार करते हैं। ठीक समसामयिक पर इतिहास कैसे लिखा जाय? मान लें कि लिख रहे हैं, तब भी वह समय 1921-1922 तक ही पहुँचेगा। द्वितीय उत्थान मे निश्चित ही पद्य की अपेक्षा गद्य की प्रधानता शुक्लजी ने दिखलाई है और उसे उन्होंने अनुभव किया भी है। द्विवेदी युग की कविता को वे इतिवृत्तात्मक बतला भी देते हैं। स्वच्छंदतावाद से सम्बन्धित उन्हें एक दो कवि ही मिले बाकी तो सब पुरानी परिपाटी के कवि थे। कविता की भाषा ब्रजभाषा होने के कारण कविता मे नवीनता के दर्शन जल्दी हुए भी नहीं। यह नवीनता साहित्य की विधाओ मे पहले पहल गद्य मे ही दिखलाई दी। इस नाते शुक्लजी ने इतिहास की योजना बनाते समय इस काल को गद्यकाल कह दिया। मन 1921 1922 की सीमा तक इस बात को स्वीकार कर भी सकते हैं।

10 IV तीनों उत्थानों की तुलना

शुक्लजी के प्रथम उत्थान मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पूरी तरह से छाये रहे हैं। गद्य से सम्बन्धित खंड तो पूरा का पूरा भारतेन्दु मण्डल है ही, इसी तरह पद्य खंड

का प्रथम उत्थान भी भारतेन्दु मण्डल है। जैसे वीरगाथा काल तथा भक्ति काल में शुक्लजी को फुटकल खाते खोलने पड़े वैसे भारतेन्दु से सम्बन्धित प्रथम उत्थान में—गद्य पद्य दोनों में—फुटकल खाता खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी है। पद्य खण्ड में कुछ लावनी बाजों का उल्लेख अलग से अवश्य कर दिया और इसी तरह खड़ी बोली की नवीन धारा का कुछ संकेत दिया। किन्तु इससे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रथम उत्थान के प्रधान व्यक्तित्व रहे हैं, यह बात प्रमाणित है।

ठीक भारतेन्दु की तरह द्विवेदीजी अपने युग पर पूरी तरह से छाये हुए हैं, ऐसा नहीं कह सकते। गद्य के मामले में भी और पद्य के मामले में भी द्विवेदीजी के प्रभाव से मुक्त काफी काम हुआ है और इसे शुक्लजी ने अलग रूप से बतलाया भी है। निबन्ध, समालोचना और भाषा ज्ञान के सम्बन्ध में उनका विशेष योगदान है। किन्तु नाटक, उपन्यास-कहानी, छोटी कहानियां आदि (सरस्वती के सम्पादक होने पर भी) पर उनका प्रभाव अपेक्षाकृत कम है। द्विवेदीजी स्वयं कवि भी थे और उन्होंने अपने मण्डल के अलग कवियों का निर्माण भी किया। इसलिए शुक्लजी ने द्विवेदी-मण्डल के कवि और द्विवेदी मण्डल से बाहर के कवि इस तरह का नामकरण भी किया है। कहना यह है कि भारतेन्दु की तरह द्विवेदीजी पूरी तरह से अपने युग में जुड़े हुए नहीं थे। शुक्लजी के द्वितीय उत्थान के विवरण से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। द्विवेदी युग में—द्वितीय उत्थान में—शुक्लजी को फुटकल खाता खोलना ही पड़ा है। द्वितीय मण्डल के बाहर के कवियों को अलग से दिखलाना पड़ा है।

तृतीय उत्थान में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र या महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की तरह किसी व्यक्तित्व को नहीं दिखलाया जा सका है। प्रथम उत्थान के गद्य-खंड और पद्य-खंड व्यक्तित्वों के कारण और प्रायः वे ही व्यक्ति गद्य तथा पद्य दोनों में साथ-साथ योग देते रहे इस कारण भी जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। द्वितीय उत्थान में भी गद्य पद्य के खंडों की यह स्थिति कुछ सीमा तक जुड़ी भी रहती है। तृतीय उत्थान में यह सब सम्भव नहीं रहा है।

द्वितीय उत्थान तक तो शुक्लजी ने जो कुछ लिखा, वह इतिहास के रूप में लिखा है किन्तु तृतीय उत्थान इतिहास के रूप में नहीं लिखा गया। गद्य-खंड को कुछ सीमा तक स्वीकार कर भी लें, तब भी पद्य खंड तो इतिहास के रूप में नहीं लिखा गया है। और दोनों खंडों की सामग्री पर तुलनात्मक रूप में विचार करें, तो शुक्लजी का औसतवाद यहां बैठता नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रथम उत्थान और द्वितीय उत्थान दोनों ही जगह उन्हें बहुत से निबन्धकार मिले और निबन्धकारों के लिए उन्होंने अपने इतिहास में काफी जगह भी दी। तृतीय उत्थान में उन्हें निबन्धकार मिले ही नहीं, वे सदैव निबन्धकारों की तलाश में रहे। दखते थे कि कोई अच्छा निबन्धकार दिखलाई दे। बहुत खोजने पर उन्हें दो नाम

निबन्धकार ही मिले—आध्यात्मिक धारा के और प्रत्यभिज्ञा के रूप मे मुगलकाल के इतिहास का ललित गद्य के रूप म प्रस्तुत करनेवाली धारा के और देखिए इन दोनो धाराओ से सम्बधित व्यक्तियो के प्रति उनका मोह रहा है। वे हैं श्री वियोगी हरिजी और महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी। इन दोनो ही लेखको की पुस्तको की भूमिकाए शुक्लजी ने लिखी भी हैं।

द्वितीय उत्थान तक के लेखन की शैली इतिहासपरक है। ततीय उत्थान मे ऐसी बात नही है। यह काल उनके इतने समीप है कि शुक्लजी स्वय उसके अग हैं और अपने व्यक्तित्व के अनुरूप वे प्रतिक्रिया व्यक्त करते प्रतीत होते हैं। ततीय उत्थान के गद्य खड की अपेक्षा पद्य खड मे शुक्लजी ने सामान्य प्रवृत्तियो का विवेचन अधिक किया है। गद्य खड तथा पद्य खड दोनो की तुलना करें और विशुद्ध रूप से साहित्य की प्रवत्तियो पर ध्यान केन्द्रित करें—साहित्य के विविध रूपो पर विचार न करते हुए—तो साहित्य की प्रधान प्रवत्तिया कविता मे ही दिखाई दती है। साहित्य के इतिहास मे यदि साहित्य की प्रवत्तियो को प्रधान मानें—आचाय शुक्ल के नियम से ही मानें—तो हमे कविता को केन्द्र मे रखकर ही इसका विवेचन करना अधिक उचित जान पडता है। इस दृष्टि से हम चाह तो दोनो उत्थानो की सामग्री को भी देख सकते हैं। इस मामले म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदाहरण देना अधिक उपयुक्त होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने युग मे गद्य की धाराओ से जुडे हुए थे, उसी प्रकार वे पद्य की धाराओ से भी जुडे हुए थे। दोनो धाराओ से जुडे हुए होन पर भी भारतेन्दुजी स्वय पद्य के लिए व्रजभाषा अपनाते थे और गद्य के लिए खडी बोली। गद्यकार भी थे और पद्यकार भी थे। उनके गद्य मे नवीनता थी और पद्य मे नवीनता नही थी। भारतेन्दुजी को प्रसिद्धि गद्यकार होने के नाते मिली है। यदि वे केवल गद्य न लिखते और केवल कवि बनकर ही रह जाते तो सभवत वे उतने ख्यात नही होते। भारतेन्दु के समय मे साहित्य की नई प्रवत्तिया गद्य मे दिखलाई दी। इसलिए इस प्रथम उत्थान को शुक्लजी न गद्यकाल कहा तो ठीक ही कहा है। द्विवेदी युग मे भी द्विवेदीजी स्वय कवि हैं किन्तु वे भी कवि होने के नाते प्रसिद्ध नही हैं। गद्यकार के रूप म ही उनकी ख्याति है। द्विवेदी युग मे भी साहित्य की नवीनता गद्य म ही दिखाई दे रही थी। पद्य मे खडी बोली का आरभ हो गया था किन्तु अब भी गद्य की नवीनता उसम नही थी। द्विवेदी युग के कुछ कवियो को छोड दे—जो केवल कवि होने के नाते ही प्रसिद्ध हैं—तो बाकी हम सब गद्यकार के रूप मे ही अधिक मिलते है। और फिर मैं दोहराने के स्वर मे यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि एक ही व्यक्ति यदि गद्य तथा पद्य दोनो म लेखन काय कर—सजन काय करे—तो उसकी अपनी प्रधान विधा वही हो सकती है जिसमे नवीनता के दशन अधिक हो सकते है या जिसमे साहित्यकार अधिक सक्षम, सहज हो। हम दखते हैं कि द्विवेदी युग तक साहित्य म गद्यकारो को अधिक ख्याति

को छायावादी युग कह दिया है।

छायावादी युग मे आकर साहित्य की केन्द्रीय विधा कविता हो जाती है। साहित्य की नवीनता के दर्शन इसके बाद गद्य के स्थान पर पद्य मे दिखलाई देने लगते है। ऐसी बात नही कि पद्य लिखने वालो ने गद्य नही लिखा हो। कवियो ने गद्य साहित्य भी विपुल परिमाण मे लिखा है और द्विवेदीजी के समय से आगे बढ़कर उत्कृष्ट गद्य साहित्य का सजन किया है किन्तु उनके अपने निजी साहित्य मे उनकी अपनी प्रधान विधा कविता ही रही है और कविता के आधार पर ही साहित्य की प्रवृत्तियो का विवेचन किया जा सकता था। यह स्थिति तृतीय उत्थान मे सबसे पहले दिखलाई दी। ऐतिहासिक दृष्टि से शुक्लजी ने यह सब लिखा न हो किन्तु इस प्रकार के संकेत उन्होने ठीक वैसे ही दे दिये हैं, जैसे रीतिकाल के अन्य कवियो का परिचय अलग से दिया है।

10 21 काव्य मीमांसा तथा समालोचना

काव्य मीमासा तथा समालोचना के क्षेत्र को देखें तो तृतीय उत्थान मे ही कुछ गति दिखलाई देती है। द्विवेदी युग की समालोचना गुण दोषो से युक्त थी, तुलनात्मक थी और संस्कृत साहित्य से प्रभावित थी। तृतीय उत्थान की समीक्षाओ मे साहित्य की केन्द्रीय विधा कविता ही रही है। गद्य-साहित्य मे नाटको पर पुस्तके मिल तो जाती है किन्तु प्रधान रूप से केन्द्र मे कविता ही समीक्षा के केन्द्र मे है। शुक्लजी ने कलाओ और साधनाओ की सूची दी है इनमे केशव की काव्य कला, प्रेमचन्द की उपन्यास कला, गुप्तजी की कला, प्रसाद की नाटय कला पदमाकर की काव्य साधना प्रसाद की काव्य साधना और मीरा की प्रेमसाधना है। कुछ और पुस्तको का उल्लेख भी शुक्लजी ने किया। शुक्लजी की निम्नलिखित पक्तिया देखिये—

> "काव्य की 'छायावाद' कही जानेवाली शाखा चले काफी दिन हुए पर ऐसी कोई समीक्षा पुस्तक देखने मे न आई जिसमें उक्त शाखा की रचना (तकनीक) प्रसार की भिन्न-भिन्न भूमिया सोच समझकर निश्चित की गई हो। केवल प्रो० नगेन्द्र की 'सुमित्रानन्दन पंत' पुस्तक ही ठिकाने की मिली।"[128]

आरम्भ मे शुक्लजी ने अपनी कृतियो, लाला भगवानदीन की कृतियो, उपाध्यायजी की कृतियो, डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल की कृति आदि का उल्लेख किया है। इनके सबध मे विस्तार से नही लिखा। छायावाद और बाद की प्रवृत्तियो से सबधित समीक्षा पद्धतियो का वे विवरण देते हैं। प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा के दोष बतलाते हैं। इसके बाद वे पश्चिम की समीक्षा पद्धतियो का प्रभाव बतलाते हैं, मैं उन सबके विस्तार मे नही जाऊँगा। विषय को समेटते हुए कहना यह चाहता हूँ कि

साहित्य की प्रवृत्तियो का सम्बन्ध कविता से रहा है। तृतीय उत्थान मे समीक्षा से सम्बन्धित रचनाएँ कविता को केन्द्र मे रखते हुए ही अभिव्यक्ति पाती रही हैं। नवीनता के दर्शन कविता मे ही दिखलाने के प्रयत्न होने लगे थे।

10 22 आधुनिक काल अपूर्ण रह गया

आधुनिक काल का इतिहास आचार्य शुक्ल ने सशोधित सस्करणो के लिए लिखा था किन्तु दुर्भाग्य से वह जुड नही सका। इस सम्बन्ध मे 'काल विभाजन' से सम्बन्धित अध्याय मे पीछे लिखा गया है। सन्दर्भ एव टिप्पणी स० 15 मे आचार्य शुक्ल के पुत्र गोकुलचन्द्र शुक्ल की पक्तिया दी गई है। शुक्लजी यदि इतिहास-लेखन काम एक शताब्दी बाद मे करते तो इतिहास का रूप कुछ और होता। सम्भवत वे आधुनिक काल को 'गद्य काल'—मात्र नही कहते। कारण यह है कि ठीक एक दशाब्दी बाद मे ही 'कविता' साहित्य की केन्द्रीय विधा हो गई थी। काव्य की प्रवृत्तियो का विवेचन आचार्य शुक्ल ने चिन्तामणि भाग 2, मे जिस प्रकार से किया है, उसे देखते हुए लगता है कि इतिहास मे इस प्रकार के चिन्तन का विवेचन आधुनिक काल के अन्तर्गत नही हो सका है। जो सामग्री खो गई है, उसमे उस तरह का परिवर्तन उन्होने निश्चित ही किया होगा। सन 1940 ई० तक तो उन्होने रहस्यमय और अभिव्यजनावाद जैसे निबन्ध लिख दिये थे। यदि उनकी खोई हुई सामग्री मिलती तो आधुनिक काल का स्वरूप कुछ और ही देखने को मिलता।

यह बात भी निश्चित रूप से स्वीकार करनी चाहिए कि सशोधित परिवर्धित सस्करण म उन्होंने पद्य-खड मे—ततीय उत्थान के ही—जितनी सामग्री जोडी है, है, उतनी गद्य खड के तृतीय उत्थान मे नही जोडी है। गद्य खड मे कुछ नई सामग्री जुडी भी है, तो *समालोचना और काव्य-मीमासा वाले अश मे ही जुडी है।* शेष सामग्री मे उन्होंने कुछ वाक्य भले ही यत्र-तत्र बदले हो किन्तु मूल ढाँचा लग-भग वही रहा होगा। यह सब मैं अनुमान से लिख रहा हूँ। मुझे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास —का यदि प्रथम सस्करण देखने को मिलता तो निष्कर्ष निकालने मे कुछ और सुविधा होती।

28 जनवरी 1985 से 1 फरवरी, 1985—अमृतसर मे आयोजित शुक्ल सगोष्ठी के लिए मुझे निमन्त्रण मिला था। तदर्थ मैंने 'आधुनिक काल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' आलेख भेज दिया था। अमृतसर जाने से पूर्व 25/26 नवम्बर 1984 को यहाँ पर आचार्य विष्णुकात शास्त्री आए थे। उन्हें मैंने अपना आलेख दिखलाया और पूछा कि शुक्लजी ने सशोधित सस्करण म परिवर्तन क्या क्या किया, इस सम्बन्ध मे कुछ सकेत देंगे क्या ? आचार्य विष्णुकात शास्त्री ने कहा कि इस सम्बन्ध म डॉ० शिवमगलसिंह सुमनजी ही कुछ बतला सकेंगे। क्योंकि सुमनजी उन दिनो आचार्य शुक्ल से सम्पर्क बनाए हुए थे। मैंने तुरन्त

सुमनजी को पत्र लिखा। पत्र का उत्तर मुझे मिल गया। उत्तर इस प्रकार है—

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

डा० शिवमंगलसिंह "सुमन"
उपाध्यक्ष

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन
हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग
लखनऊ—226001
दिनांक 12 दिसम्बर, 1984,

प्रिय भाई बोराजी,

आपका दिनांक 26 नवम्बर का कृपा पत्र प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। इस बीच में शुक्ल शती समापन समारोह दिल्ली भी गया था और हिन्दी संस्थान, लखनऊ में भी उसके आयोजन में व्यस्त रहा, अतएव आपके पत्र का उत्तर समय पर न दे सका। इस बीच भोपाल में प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'साक्षात्कार' मासिक में मेरा एक संस्मरण 'महाकाव्यात्मक औदार्य के आकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। उनमें मैंने इस सम्बन्ध में चर्चा कर दी है। आशा है, इससे आपका कार्य चल जाएगा। संक्षेप में यह कह दूं कि—

1 हिन्दी साहित्य के अंतिम संस्करण के सम्बन्ध में मेरे समकालीन और समवयस्क कवियों की कृतियों के संबंध में उन्होंने मुझसे जानकारी मांगी थी, जो मैंने लिखकर दे दी थी। उसमें प्रकाशित वह सूची उसी रूप में आपको उपलब्ध हो जाएगी।

2 वे इस संस्करण में छायावादी कवियों विशेषकर महादेवी और निराला के संबंध में भी विशेष रूप से लिखना चाहते थे, जिसके नोटस भी उन्होंने तैयार कर लिए थे।

आप इससे अधिक कोई जानकारी चाहें तो प्रेषित करने में मुझे प्रसन्नता होगी।

सस्नेह एवं साभार—

आपका
शिवमंगलसिंह सुमन

पत्र से यह बात स्पष्ट होती है कि इतिहास के पृ० 720 तथा 721 पर कवियों तथा रचनाओं की जो सूची दी गई है वह डॉ० शिवमंगलसिंह सुमन जी द्वारा दी गई है। यह सूची छायावादी कवियों से सम्बंधित ही है। सूची से पहले सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला और महादेवी के सम्बन्ध में लिखा हुआ अंश है। लगता है यह अपूर्ण है। क्योंकि ठीक इसके पहले पंत पर लगभग 21 पृष्ठों की सामग्री है। तो क्या फिर निराला 5 पृष्ठों में महादेवी 1 पृष्ठ में ही चलता कर दिया ? ऐसा नहीं है। सामग्री जोड़ी नहीं गई। लिखी थी सो खो गई। अस्तु।

शुक्लजी की स्थापनाओं तथा उनकी समीक्षा पद्धति या समसामयिक साहित्य

के प्रति उनकी निजी प्रतिक्रिया, यह सब इस समय प्रयोजनीय नही है। यह अलग विषय है। आधुनिक काल का इतिहास शुक्लजी ने कैसे लिखा और उनके सामने जो सामग्री प्रस्तुत थी उसका विभाजन या वर्गीकरण कैसे किया, यह सब दिखलाना मुझे इष्ट रहा है। सामग्री अब तो इतने विपुल परिणाम मे उपलब्ध हो गई है कि शुक्लजी के तीनो उत्थानो को नये सिरे से लिखने, वर्गीकरण करने आदि की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। इस विशाल भण्डार को देखकर शायद ही कोई एक व्यक्ति इस सामग्री पर निजी रूप मे शुक्लजी की तरह तयार हो। अकेले व्यक्ति ने यह सारा काय कितने साहस और धीरता के साथ बुद्धिवादी ढग से किया है कि चकित रह जाना पडता है। शुक्लजी के इतिहास के पन्नो से गुजर जाओ तो रुक रुक कर कवियो, नाटककारो, निबन्धकारो, कथाकारो पर सोचने-समझने का प्रयत्न करना पडता है। उनके विचारो का मूल्य कम नही होता। एक इतिहासकार ही किसी दूसरे इतिहासकार का मूल्य कर सकता है। ऐसी प्रतिभा की हम प्रतीक्षा मे हैं। अभी तो हम उनके गौरव को आकने का प्रयत्न कर रहे हैं और चाहते हैं कि उनके अध्ययन से हमे उनका वह बल प्राप्त हो।



11 कितने नए कितने पुराने ?

11 1 कितने नए, कितने पुराने ?

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह जन्म शताब्दी वर्ष है और वैसे, आप सब तो आचार्य शुक्ल को किसी न किसी रूप मे जानते ही हैं, इस अवसर पर शुक्ल जी को स्मरण करते समय किस विषय पर लिखूं ? शुक्ल जी की मृत्यु सन 1941 ई० मे हुई। आज इस बात को 43 वर्ष (चार दशक से कुछ अधिक) हो चुके है। इसके बाद भी आज शुक्ल जी याद किए जाते हैं तो इसलिए कि उनमे अपने समय की नवीनता को आज भी मान्यता प्राप्त है। वे कितने पुराने हैं, इस बात पर तो उनके समय मे ही उनको नकारने वालो ने उन्हें प्रकारांतर से (सीधे भले ही न नकारा हो) ललकारा है। वे नए भी है, वे पुराने भी हैं कितने नए है और कितने पुराने हैं ? इसी विषय पर मैं कुछ कहने का प्रयत्न इस समय आपके सम्मुख करना चाहूँगा।

11 2 व्यक्तित्व के रूप

शुक्ल जी निबन्धकार हैं समीक्षक हैं, इतिहासकार (साहित्य का इतिहास लिखनेवाले) और आचार्य है। ये चार रूप उनके व्यक्तित्व से जुडे हुए है। इसके अतिरिक्त वे कवि, सपादक तथा ज्ञान विज्ञान की अन्य शाखाओ पर लिखने वाले लेखक भी रहे हैं। फुटकल रूप मे उन्होंने जितना लिखा है, वह अब भी पूरी तरह से प्रकाशित नही है। उनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें उनके जीवन काल मे नही छपी। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनकी रचनाओ का सपादन कर उन्हें बाद मे छापा है। चिंतामणि भाग 2, रसमीमासा, सूरदास आदि पुस्तको का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद हुआ और उनका सपादन आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया है। इधर हाल म चिंतामणि भाग 3 पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसका सपादन डॉ० नामवर सिंह ने किया है और इसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2 से 1983 ई० म हुआ है। उनका कविता संग्रह 'मधुस्रोत' के नाम से पहले नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष 75, अक 2 सवत 2027) म छपा और बाद मे पुस्तकाकार रूप मे सभा से ही उसका प्रकाशन हुआ है। इस समय तो

उनकी सभी पुस्तको पर विचार नही कर पाऊँगा। उनके एक पक्ष पर भी कहने के लिये अधिक समय चाहिए। मैं केवल निबधकार, समीक्षक, इतिहासकार और आचाय से सबधित रूपो पर तुलनात्मक रूप मे कुछ कहूँगा अर्थात् उनके व्यक्तित्व से जुडे इन चारो रूपो मे कौनसा प्रधान है, इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँगा और यह भी उनकी अपनी रचनाओ मे ही। इस तथ्य को यदि मैं रेखाकित करना चाहूँ और उनके व्यक्तित्व से जोडू तो रेखाकन इस प्रकार होगा—

निबधकार→समीक्षक→इतिहासकार→आचाय। मेरी अपनी मा यता यह है कि मूलत शुक्ल जी निबधकार थे। निबध विधा की दष्टि से विचार करें तो उक्त विधा की समस्त विशेषताएँ उनके निबधो मे मौलिक रूप म मौजूद हैं। आरभ से अन्त तक वे निबध के विषय का ध्यान रखते हैं। विषय को लोक से हटते नही। आरम्भ (परिभाषाओ के साथ), विस्तार, विवेचन, वर्गीकरण (उदाहरण के साथ), विश्लेषण, उपसहार—सब कुछ उनके निबधो मे इतने ठीक ठीक है कि उनके अपने भीतर जो सचित ज्ञान उक्त विषय से सबधित था उसे उ होन अपने निबधो मे बद्ध कर दिया है। शुक्ल जी के निबधो मे जो पूणता पाई जाती है, वह पूणता तुलनात्मक रूप मे उनकी पुस्तको मे नही पाई जाती। पुस्तक की योजना बनाकर, पुस्तक की पूणता का विचार करते हुए उ होने प्राय नही लिखा। उनकी लिखी हुइ सामग्री को—निबधो के रूप मे लिखी हुई सामग्री को—बाद मे पुस्तको का रूप दिया गया और फिर पुस्तको मे जोडते हुए पुस्तक के रूप मे उसे फिर से पुस्तक की पूणता के रूप मे लिखना सभव नही हुआ। चितामणि भाग 1, पुस्तक जो निबध की ही पुस्तक मानी जाती है, सकलन ही है। निबध ही उसम हैं। यह उनके जीवनकाल मे छपी हुई पुस्तक है।

11 3 निबधकार

आचाय शुक्ल ने पुस्तक रूप मे योजना बनाकर कम लिखा और योजना बनी भी तो बाद मे, कुछ पूण हुई और कुछ अपूण रह गई। किंतु उ होन अपने निबधो को पूणता प्रदान की है। किसी विषय पर लिखते समय उस विषय पर पूणता प्रदान करने का उ होंने सदैव प्रयत्न किया। उ होने अपने लेखन को बारबार परिमार्जित किया है और अपनी सामग्री को निबध रूप मे परिपूण बनाया है। चितामणि भाग 1 और चितामणि भाग 2 की बहुत सी सामग्री रसमीमासा पुस्तक मे मौजूद है रसमीमासा मे कच्ची सामग्री है, उसे आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया है किंतु मैं यहा पर यह कहना चाहता हूँ कि इस कच्ची सामग्री को निबध रूप मे पूणता देकर उ होंने प्रकाशित किया। कच्ची सामग्री के रूप म या पुस्तक की योजना के रूप मे उ होंने उसे प्रकाशित नही किया। सक्षेप मे आचाय शुक्ल का प्रधान वाना निबधकार का है। उनके निबध

विषयपरक होते हुए व्यक्तिप्रधान हो गए, इसी मे उनके व्यक्तित्व का खरा रूप अपनी मौलिकता मे उजागर हुआ है। चिंतामणि भाग 2 के तीनो निबध अपने अपने विषय मे निबध की दृष्टि से परिपूर्ण हैं। अब यह बात अलग है कि उन निबधो ने प्रबध का रूप (विशाल या दीर्घ निबधो का रूप) ले लिया। इन तीनो निबधो मे भी 'काव्य मे अभिव्यजनावाद' सबसे बडा है। इतना बडा निबध लिखने के लिये बडा धैर्य और व्यक्तित्व का बल चाहिए। और फिर देखिए, यह निबध उन्होने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चौबीसवें इदौर अधिवेशन के लिए लिखा था और साहित्य परिषद के सभापति पद से पढकर भाषण रूप मे सुनाया था। श्रोताओ मे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार और चितक जैनेंद्रकुमार उपस्थित थे। उन्होने बाद म लिखा कि शुक्ल जी का भाषण—पढकर सुनाया गया भाषण—उनके सिर पर से गुजर गया। बाद म वह निबध उन्होने दो बार बार पढा भी किंतु ऊपर ऊपर से उड गया। पूरी तरह वे निबध को एक क्रम मे, एक बैठक मे पकड नही पाए। इस उदाहरण के माध्यम से मैं यहाँ कहना यह चाहता हूँ कि उन्होने निबध रूप को विषय की दृष्टि से परिपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया और इस विस्तार के कारण उनका यह निबध आवश्यकता के कारण प्रबध हो गया।

प्राय होता यह है कि लेखक अपनी रचना को ठीक से परिमार्जित नही करते हैं। शुक्ल जी ने अपने निबधो को परिमार्जित किया है। रसमीमासा और चिंतामणि भाग 1 और भाग 2 की तुलना करने से ही यह बात प्रमाणित हो जाएगी। 'कविता क्या है?' निबध पहले बहुत छोटा था। सरस्वती हीरक जयती के अक म उक्त निबध का अश छपा है। चिंतामणि भाग 1, मे वही निबध सशोधित और विकसित रूप मे है। इसी तरह और निबध भी हैं। उनकी कच्ची सामग्री चिंतामणि भाग 3 मे प्रकाशित है। इस सामग्री को उन्होंने सशोधित किया है। शुक्ल जी के ज्ञान और चिंतन मे विकास हुआ तो उसके अनुरूप उन्होने अपने निबधो को बदला और अपने चिंतन के अनुरूप उसे नया रूप दिया है। यह विशेषता बहुत कम लेखको म मिलती है। अपने चिंतन को जीवित रखना और तदनुसार विषय को नवीन दीप्ति से युक्त करना उनके निबध लेखन का विशेष गुण है और इस मामले मे उनकी मौलिकता तथा नवीनता को आज भी नकारा नही जाता। निबधकार के बाद मैं शुक्ल जी के समीक्षक व्यक्तित्व पर कुछ कहना चाहूँगा।

11 4 समीक्षक

आचार्य शुक्ल ने दो पुस्तको की भूमिकाएँ लिखी हैं (भूमिकाएँ उनकी और भी हैं यहाँ मैं केवल दो का उल्लेख कर रहा हूँ)—1 प० वियोगी हरि की विनयपत्रिका की हरितोषिणी टीका की और 2 महाराज कुमार रघुबीर सिंह के

निबधो के सग्रह 'शेष स्मृतियाँ' पुस्तक की। दोनो पुस्तको की भूमिकाएँ सबधित पुस्तको मे जिस रूप मे प्रकाशित है, उन्हें देख जाएँ और उन भूमिकाओ के परिमार्जित और सशोधित रूप चितामणि भाग 1 म देख जाए तो शुक्ल जी के निबधकार और समीक्षक रूपो की तुलना हो जाएगी। पुस्तको मे जो भूमिकाएँ प्रकाशित हैं, उनमे शुक्ल जी का समीक्षात्मक रूप है और चितामणि भाग 1 मे जो सशोधित और परिमार्जित रूप है, वह निबधकार का रूप है। शुक्ल जी ने अपने समीक्षात्मक लेखन को निबधात्मक रूप दिया है। उनके सारे समीक्षात्मक लेखन को तो निबधात्मक रूप नही दिया जा सका है, किंतु जिस समीक्षात्मक लेखन को उन्होने निबधात्मक रूप दिया है, उसके आधार पर ही उनके व्यक्तित्व को पहचाना जा सकता है। परिमाण की दृष्टि से विचार करें तो उनका समीक्षात्मक लेखन निबधो के परिमाण से अधिक है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' की सामग्री ही नही उनकी स्वतत्र पुस्तकें जो सूर, तुलसी और जायसी पर प्रकाशित हुई हैं, उनम समीक्षात्मक लेखन अधिक है। उनका पक्का माना निबधकार का होते हुए भी उनकी लेखन सामग्री के परिमाण को देखते हुए, उन्हे प्रधान रूप से समीक्षक ही माना जाता है ? उनपर जो दोषारोपण होते है और तरह-तरह से उन्हे नकारने के जो प्रयास हुए हैं और आज भी होते हैं, वह सब उनके समीक्षात्मक लेखन के कारण ही हैं। निबधकार के रूप मे उन्हे सभवत पुराना न माना जाय किंतु समीक्षात्मक रूप मे वे पुराने है, ऐसा बतलाया जाता है। विशेष रूप से उनके पूर्वाग्रहो का विरोध होता रहा हैं जिनके विस्तार मे मैं यहाँ जाना नही चाहूँगा।

शुक्ल जी के समस्त लेखन के केन्द्र मे समीक्षाएँ प्रधान हैं किंतु समीक्षा के रूप मे उनकी एक ही पुस्तक 'तुलसीदास' उनके जीवन काल मे प्रकाशित हुई। तुलसीदास आचाय शुक्ल की समीक्षाओ के प्रतिमान हैं, किंतु तुलसीदास पुस्तक बहुत छोटी है। तुलसी पर उन्होंने उतना श्रम नही किया जितना जायसी ग्रथावली के सपादन और उसकी भूमिका लिखने म किया है। शुक्ल जी ने शोध-काय को समीक्षा की दीप्ति जायसी ग्रथावली की भूमिका मे ही दी है। सूरदास मे उनका मन अधिक नही रमा है। इसके चाहे जो कारण हो, किंतु यह सच्चाई है कि सूरदास पर उन्होंने योजनबद्ध काम नही किया। सूरसागर के सपादन का काम उन्हे नागरी प्रचारिणी सभा ने दिया था किंतु वे उसे पूरा नही कर पाए। बाद मे उन्होने सपादक का काम बद भी कर दिया। जो कुछ काम हो गया था और सूरदास उनकी साहित्यिक अभिरुचि मे जिस रूप मे अनुकूल प्रतीत हुए हैं, उसे उन्होने फुटकल रूप मे लिख डाला है। सूरसागर का सपादन करते करत 'भ्रमरगीतसार' का सपादन कर लिया और उसकी भूमिका भी लिख दी। भ्रमर-गीतसार की भूमिका और स्फुट लेखन को आधार बनाकर आचाय विश्वनाथ

प्रसाद मिश्र ने बाद मे 'सूरदास' पुस्तक का सम्पादन किया। सूरसागर का काम बाद मे आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने पूर्ण किया। शुक्लजी की समीक्षाओ मे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' को छोड दें तो तीन ही कवि प्रधान दिखलाई देते हैं, जिन पर उन्होने विस्तार से विवेचन करने का प्रयास किया। तुलसी पर प्रत्यक्ष रूप मे कम लिखा किंतु और सब लिखते समय तुलसी को वे भूलते नही हैं। इसलिए तुलसी उनके समीक्षात्मक लेखन का प्रधान आधार और उनकी साहित्यिक अभि-रुचि का प्रधान केन्द्र हैं। जायसी पर उनका श्रम शोध रूप मे अधिक है। इतना श्रम उन्होंने और किसी कवि पर नही किया। चंद्रबली पांडेय से (जो उनके परम प्रिय शिष्य रहे) सूफी साहित्य पर ही उन्होने काम करवाया। सूरदास के संबंध मे अभी कह ही चुका हूँ। तुलसीदास पुस्तक मे उन्होने सूरदास को उतना याद नही किया जितना सूरदास पर लिखते समय तुलसीदास को याद किया है और यही स्थिति जायसी ग्रंथावली की भूमिका के संबंध मे भी रही है।

समीक्षक के रूप मे जिन तीन प्रधान कवियो को लेकर शुक्ल जी ने लिखा उन सबके संबंध मे विवाद होते हुए भी स्थापनाओ मे जो नवीनता—बौद्धिक दीप्ति या प्रतिपादन कह लीजिए—विद्यमान थी, उसको स्वीकारा गया है। इसी के आधार पर शुक्ल जी को समीक्षक के रूप मे ख्याति मिली भी है। किंतु उतने ही बल से वे सब कवियो पर नही लिख सके हैं और सच तो यह है कि लिख भी कैसे सकते थे ? बाकी शेष समीक्षात्मक लेखन 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे है। शुक्ल जी के इतिहास मे उनका समीक्षात्मक लेखन प्रधान है। उनकी साहित्यिक अभिरुचि ने कवियो और रचनाकारो की समीक्षाओ को प्रभावित किया है। विद्वान लोग उन्हे यही पर पकडते हैं और आउट ऑफ डेट कहते है, अप्रासंगिक कहते हैं, पूर्वाग्रही कहते हैं और उनके प्रतिमानो को कच्चा प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। कबीर और केशववादी, रीतिकाल के प्रेमी और छायावादी और बाद मे और भी समीक्षाओ के जितने दौर चले है, वे सब शुक्ल जी से प्रसन्न नही हैं। किंतु ऐसा कहते समय वे अपने मन मे शुक्ल जी से आतंकित रहते हैं। शुक्ल जी के समीक्षात्मक लेखन की धाक इतनी जबरदस्त है कि उनकी टक्कर मे खडे रहने का साहस वैचारिक धरातल पर उनके समय मे छोड दीजिए, आज भी किसी मे नही मिलता है। मेरा कहना यह है कि नकारने वालो को सकार की सामग्री प्रस्तुत करनी चाहिए। नकारना जितना सरल है, बौद्धिक धरातल पर विकल्पात्मक रूप मे सकारने वाली सामग्री को प्रस्तुत करना बहुत कठिन है। शुक्ल जी इतने बलवान हैं कि नकारने वाला उनकी पुस्तको को पढ जाय और ईमानदारी से पढ जाय तो अभिभूत हुए बिना—उनकी बौद्धिकता की दाद दिए बिना नही रह सकेगा। जब तक विषय पकड मे नही आएगा तब तक उनके व्यक्तित्व को पकडना ही कठिन है। शुक्ल जी, आज भी अपनी जगह तमाम

कमजोरियो के बावजूद इतने अडिग हैं कि उनके व्यक्तित्व को ललकारने के लिए विषय से पहले जूझना पड़ेगा। विषय से जूझने के बाद ही उनके व्यक्तित्व को ललकारा जा सकता है। इस तरह से ललकारने वालो मे ललकारनेवाला उनकी ताकत को जितना समझता है, अपने को उतनी ताकत से उन्हें पकड़ नही पाता। मैं प्रधान रूप म विकल्प की बात कह रहा हू और आज भी मुझे उनके व्यक्तित्व का विकल्प समीक्षक के रूप मे ही हिन्दी साहित्य मे दिखलाई नही देता। वस्तु स्थिति यह है कि वे निबधकार के रूप मे परिपूर्ण हैं, समीक्षक के रूप म परिपूर्ण नही किंतु समीक्षक की उनकी सामग्री—परिमाण मे यह सामग्री अधिक है—भी अनेक कमजोरियो के बावजूद प्रभावित करती है।

11 5 इतिहासकार

इतिहासकार और आचार्यत्व के रूप मे सक्षेप म ही कुछ कह सकूगा। उनके इतिहास को 'इतिहास के प्रतिमानो के आधार पर' कमजोर बतलाया जाता है। उनके अपने लेखन मे उनका इतिहास ग्रथ समीक्षात्मक रूप मे प्रधान है। इसपर भी अपनी समीक्षाओ का क्रम देकर साहित्यिक प्रवत्तियो का विभाजन कर राज-नीतिक प्रवत्तिया के सदर्भ मे परखने का उनका प्रयास एकदम मौलिक है। इससे लोग आज सहमत भले ही न हो किंतु उसकी स्वीकृति मे 'इतिहास की विकास धारा' आज भी जीवित है कालो के नामकरण को प्रकारान्तर से आज भी मान्यता प्राप्त है। इतिहास मे शोधपक्ष का रूप उनमे कम है और समीक्षा का प्रधान। अत शोधपक्ष की दृष्टि से जो नवीन तथ्य प्रकाश म आए हैं उनके आधार पर उनका इतिहास कमजोर है, इस तथ्य को बार बार दुहराया जाता है किंतु उपलब्ध तथ्या को उनके मौलिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य मे देखें तो उनके इतिहास को आज भी बेजोड कहना ही पडता है। आज हम कुछ सीमा तक (हिन्दी साहित्य के इतिहास का विकास क्रम देखना न चाहे तो) मिश्रबधु विनोद न पढें तो चल सकता है किंतु शुक्ल जी का इतिहास सारी कमजोरियो के बावजूद पढेंगे क्याकि उसके बिना हिन्दी साहित्य के इतिहास की नवीनताओ को उजागर नही किया जा सकेगा।

11 6 आचार्य

अत मे आचार्यत्व पर कुछ शब्द। आचार्य रूप मे शुक्ल जी ने कोई शास्त्रीय ग्रथ न तो लिखा और न उस रूप मे उनकी कोई रचना प्रकाशित है। इसपर भी उनके व्यक्तित्व की छाप उनके पाठको पर समस्त रूप मे जो छाई रहती है, वह प्रधान रूप म उनके आचार्यत्व की ही है। इस आचार्यत्व का रूप उनके निबधो मे परिपूर्ण रूप से अवतरित है और ये निबध इतिहास और समीक्षा से

छनकर आए हुए हैं। रसमीमासा से सगहीत सामग्री उनके आचायत्व की तैयारी की सामग्री है। उनके निबध पढकर हम उनके आचायत्व को मानने के लिए तैयार हो जाते हैं। उनकी समीक्षाएँ व्यावहारिक हैं किंतु आचायत्व का मूल आधार ये व्यावहारिक समीक्षाएँ ही हैं। शेष स्मृतिया (महाराजकुमार रघुवीर सिंह की पुस्तक) की प्रवेशिका (भूमिका) व्यावहारिक समीक्षा है और रसात्मक बोध के विविध रूप (चिंतामणि भाग 1 का अतिम निबध) उनके आचायत्व का प्रमाण रूप है। यह बात अलग है कि आचायत्व को उन्होंने शास्त्रीय रूप मे कम और निबध रूप मे अधिक लिखा। उनके व्यक्तित्व मे दो रूप प्रधान हैं—निबधकार और आचायत्व। इन दोनो रूपो मे मूल्याकन करें तो उनकी नवीनता को पहचाना जा सकता है। इतिहासकार और समीक्षक के रूप मे वे पुराने प्रतीत होने पर भी उनके व्यक्तित्व से ये दोनो रूप ऐसे जुडे हुए हैं कि उन्होंने स्वय अपने इन दोनो रूपो को निबधकार रूप मे परिमार्जित किया है और वहा वे आज भी नवीन है।*

□ □ □

---

* 20 मार्च 1984 ई० को हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद मे पठित भाषण।

परिशिष्ट-1

वियोगीहरि कृत हरितोषिणी टीका का परिचय

प० वियोगीहरि ने विनयपत्रिका की टीका लिखी है। यह टीका हरितोषिणी टीका कहलाती है। इस टीका का 'परिचय' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दिया है। यह परिचय हरितोषिणी टीका के आरम्भ में भूमिका के रूप में है। इसका लेखन काल 5 जनवरी, 1924 ई० है। मेरी सहज जिज्ञासा हुई कि यह 'परिचय' शुक्ल जी ने क्यों लिखा? क्या प० वियोगीहरि जी ने इसके लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से सम्पर्क किया था? तदनुसार मैंने प० वियोगीहरि जी को पत्र लिखा। पत्र का उत्तर मुझे इस प्रकार मिला है—

एफ 13/2 माडल टाउन, दिल्ली 9
दिनाक 3-8 84

प्रिय डा० राजमल,
सप्रेम नमस्कार

आपका 31 जुलाई 84 का पत्र मिला। विनयपत्रिका की टीका का परिचय लिख देने के लिए उसके प्रकाशक स्व० मुकुन्ददास गुप्त ने श्रद्धेय शुक्लजी से निवेदन किया था। मैं उससे पहले शुक्लजी से शायद मिला भी नही था। बाद मे एक-दो बार मिलना हुआ इतना ही मुझे याद है।

आपका
वियोगी हरि

आप हरितोषिणी टीका की भूमिका के रूप मे लिखे परिचय को पढ़ें और चिन्तामणि भाग 1, में प्रकाशित 'तुलसी का भक्तिमार्ग' निबन्ध पढ़ें, तो ज्ञात होगा कि 'तुलसी का भक्तिमार्ग'—निबन्ध विनयपत्रिका के परिचय का सशोधित, सक्षिप्त रूप है। परिचय 10 पृष्ठो का है, जबकि चिन्तामणि भाग 1—का निबन्ध 6 पृष्ठो मे है। 4 पृष्ठ शुक्लजी ने कम कर दिये हैं। यदि किसी ने 'तुलसी का भक्तिमार्ग'

निबन्ध ही चिन्तामणि भाग 1 मे पढा है, तो वह यह नही जान सकता कि य निबन्ध पहले किसी पुस्तक के परिचय के रूप मे लिखा हुआ भाग रहा है।

परिचय मे प्रकाशित अन्तिम दोनो अनुच्छेद चिन्तामणि भाग 1, के निब म नही हैं। इन दो अनुच्छेदो से पहले विनयपत्रिका के कुल उदाहरण भी कम क दिये हैं। दूसरी बात यह है कि चिन्तामणि भाग 1—निबन्ध का शीर्षक 'तुलस का भक्तिमार्ग है'। विनयपत्रिका का परिचय देना और तुलसी का परिचय देना— दोनों म भेद है। 'हरितोषिणी टीका' के परिचय मे ध्यान 'विनयपत्रिका', उसक टीका और टीकाकार (प० वियोगीहरि जी) पर रहा है। इस तुलना म चिन्ता मणि भाग 1, के निबन्ध मे ध्यान प्रधान रूप से 'गोस्वामी तुलसीदास के भक्ति मार्ग' पर रहा है। विनयपत्रिका चूकि तुलसी की भक्ति का प्रधान आधार प्र है। अत विनयपत्रिका को आधार मानकर 'गोस्वामी तुलसीदास' की भक्ति क विश्लेषण तथा विवेचन शुक्लजी ने चिन्तामणि भाग 1, के निबन्ध मे किया है सामग्री एक होने पर भी शीर्षक मे परिवर्तन हो जाने के कारण निबन्ध को शीर्षक के अनुसार बदल दिया गया।

परिचय के दोनो अन्तिम अनुच्छेद इस प्रकार है—

> "श्रीयुत् वियोगीहरि जी ने यह एक दूसरी विस्तृत और विशद टीक प्रस्तुत की है। जिस श्रम के साथ उन्होने इस कार्य को ऐसे सुचारू रूप से सम्पन्न किया है—उसके लिए वे समस्त हिन्दी पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं। भावार्थ अत्यन्त सुगम और सुबोध रीति से लिखे गए हैं। पद के भीतर आए हुए प्रसगो की कुछ अधिक चर्चा टिप्पणियों मे की गई है। और टीकाकारो से मतभेद के कारण भी इन्ही टिप्पणियो म दिए गए हैं। सबसे बडी विशेषता है स्थान स्थान पर और और कवियो की मिलती जुलती उक्तियो का सन्निवेश, जिनके द्वारा पाठक भाव तक पूर्ण रूप से पहुँचने के अतिरिक्त साहित्य क्षेत्र मे और इधर-उधर देखभाल करने की उत्कण्ठा भी प्राप्त कर सकते हैं। कुछ टीकाकारो के चमत्कारो का भी थोडा बहुत नमूना टिप्पणी के रूप म कहीं-कहीं मिल जाता है, जैसे 130वें पद मे 'राम शब्द क छ बार आने के तीन कारण। वास्तव मे ऐसी ही टीकाओं की आवश्यकता है जिनमे न तो मूल विषय से बादरायण सम्बन्ध मात्र रखनेवाला अनावश्यक विस्तार ही हो, और न वचन की इतनी दरिद्रता ही कि पाठक बेचारे मुह ताकते ही रह जाएँ।
>
> इस टीका मे भी दो-एक जगह जो त्रुटियाँ रह गई हैं—वे, आशा है, अगले सस्करण मे सुधार दी जाएँगी। टीका वास्तव मे जैसी होनी चाहिए—वैसी ही हुई है।"[129]

यह सारा अश चिन्तामणि भाग 1 के निबन्ध के लिए उपयोगी नही था। इन पक्तियों मे वियोगी हरिजी का उल्लेख है और यह उल्लेख विनयपत्रिका की टीका के सदभ म है। ऊपर प० वियोगी हरिजी का पत्र उदघृत है। उससे पता चलता है कि प० वियोगीहरि जी का शुक्लजी से विशेष परिचय नहीं था। यह तो प्रकाशक की ओर से सम्भव हुआ। शुक्लजी ने वैसे ही दूसरे लेखकों की पुस्तकों की भूमिकाएँ नही लिखी हैं। और किसी लेखक का इतना साहस नहीं हुआ कि उनके पास पहुँचकर अपनी पुस्तक की भूमिका लिखवा ले। सच तो यह भी है कि शुक्ल जी की साहित्यिक अभिरुचि म कोई विषय और लेखक मन मे बैठ जाता, तो फिर शुक्लजी स्वय अपनी ओर से भूमिका के लिए पहल कर सकते थे। ऐसा बहुत कम हुआ है। अपनी पुस्तकों की भूमिकाएँ तो उन्होंने लिखी ही हैं। किन्तु दूसरों की पुस्तकों की भूमिकाएँ बहुत कम लिखी हैं। प्रधान रूप से उन्होंने दो व्यक्तियों के पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखी हैं और दोनों मे ही दोनों लेखकों ने शुक्लजी से सीधा सम्पर्क नहीं किया है। उन दोनों मे एक तो स्वय वियोगीहरि जी हैं और दूसरा नाम महाराजकुमार रघुवीरसिंह का लिया जा सकता है। वियोगीहरि जी की पुस्तक के लिए तो प्रकाशक ने अनुरोध किया था किन्तु 'शेष स्मृतियाँ' पुस्तक की प्रवेशिका के लिखने का निर्णय शुक्लजी का अपना निर्णय था। शुक्लजी जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन म इन्दौर गये थे (अप्रैल 1935 ई०), उस समय महाराजकुमार रघुवीरसिंह से स्वय उन्होंने कहा कि अपने निबन्धों का सकलन कर उन्हें भेज दें तो वे 'प्रवेशिका' लिख देंगे। तदनुसार उन्होंने प्रवेशिका लिखी भी। एक और पुस्तक की भूमिका उन्होंने लिखी है। शुक्ल जी की पत्नी विदुषी थी। शुक्लजी ने जसे शशाक (बँगला उपन्यास) का अनुवाद हिन्दी मे किया। ठीक उसी तरह उनकी पत्नी ने भी कलकिनी बँगला उपन्यास का हिन्दी मे अनुवाद किया। अपनी पत्नी के इस अनूदित उपन्यास की भूमिका भी शुक्लजी ने लिखी है। यह सन् 1922 ई० की बात है। शुक्लजी के द्वारा अनूदित पुस्तक शशाक की भूमिका तो चिन्तामणि भाग 3, मे (डॉ० नामवरसिंह द्वारा सम्पादित) छप गई है किन्तु कलकिनी की भूमिका उसम सम्मिलित नही है। यह भूमिका मैंने भी कही देखी नही है। इसका उल्लेख चन्द्रशेखर शुक्ल ने अपनी पुस्तक रामचन्द्र शुक्ल मे किया है—पृ० 321। इस उल्लेख के साथ-साथ यह भी लिखा है कि शुक्लजी की पत्नी ने एक और उपन्यास 'शैलबाला' का भी हिन्दी म अनुवाद किया था।

गोस्वामी तुलसीदास शुक्लजी की अपनी अभिरुचि के कवि हैं। तुलसी ने शुक्ल को शुक्ल बना दिया है। रामचन्द्र तो वे थे ही। तुलसी की विनयपत्रिका उनकी अपनी प्रिय पुस्तकों मे थी। फिर भला वे उसका परिचय क्यो न लिखते? परिचय लिखते समय उनका ध्यान विनयपत्रिका, उसकी टीका और टीकाकार

पर रहा है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने भक्ति का विवेचन भी किया। विनयपत्रिका तुलसी की भक्ति का परिचय देनेवाला प्रधान काव्य है। तुलसी के भक्तिमार्ग का विवेचन *विनयपत्रिका को छोड़कर नहीं किया जा सकता। हरितोषिणी टीका* के परिचय को जब 'तुलसी का भक्ति-मार्ग' में परिणत किया, तो उन्होंने रचना का नाम हटाकर कवि का नाम लिख दिया। एक बात और लिख दूँ कि शुक्लजी के *निबन्धों का प्रथम वाक्य तथा प्रथम अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण रहता है।* अपने निबन्ध की स्थापना वे प्रथम अनुच्छेद में ही कर देते हैं। बाद के अनुच्छेद उस प्रथम अनुच्छेद के विस्तार में और अपनी स्थापनाओं को पुष्ट करने में वे लिखते हैं। यहाँ पर कुछ विस्तार तो होगा किन्तु शुक्लजी के *व्यक्तित्व को समझाने के* लिए मैं निबन्ध का प्रथम अनुच्छेद नीचे उद्धृत कर रहा हूँ—

> "भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा तुलसीदास जी/विनयपत्रिका में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलंबन के महत्त्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल शब्द स्रोत निकले हैं, जिसमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यंत प्रफुल्लता आती है। गोस्वामीजी के भक्ति के क्षेत्र में शील, शक्ति और सौंदर्य तीनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मनुष्य की सम्पूर्ण भावात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार के लिए मैदान पड़ा हुआ है। वहाँ जिस प्रकार लोक व्यवहार में से अपने को अलग करके आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होनेवाले काम, क्रोध आदि शत्रुओं से बहुत दूर रहने का मार्ग पा सकते हैं, उसी प्रकार लोक व्यवहार में मग्न रहनेवाले अपने भिन्न भिन्न कर्त्तव्यों के भीतर ही आनन्द की वह ज्योति पा सकते हैं जिससे इस जीवन में दिव्य जीवन का आभास मिलने लगता है और मनुष्य के वे सब कर्म, वे सब वचन और वे सब भाव—क्या डूबते हुए को बचाना, क्या अत्याचारी पर शस्त्र चलाना, क्या स्तुति करना, क्या निन्दा करना, क्या दया से आर्द्र होना, क्या क्रोध से तमतमाना —जिनसे लोक का कल्याण होता आया है भगवान के लिए लोक पालन करनेवाले कर्म, वचन और भाव में दिखाई पड़ते हैं।"[130]

हरितोषिणी टीका का परिचय तथा चिंतामणि भाग 1, के 'तुलसी का भक्तिमार्ग' निबंध—दोनों स्थानों पर यह प्रथम अनुच्छेद एक समान है। दो स्थानों पर अंतर दिखलाई देगा। प्रथम वाक्य में परिचय में विनयपत्रिका है और दूसरे स्थान पर तुलसीदासजी हैं। परिचय में रेखांकित शब्द 'वहाँ' नहीं है। यह शब्द 'जिस प्रकार' से पहले जोड़ दिया गया है। दूसरे अनुच्छेद में केवल एक स्थान पर परिवर्तन किया है—विनयपत्रिका के स्थान पर गोस्वामीजी शब्द रख दिया गया है। तीसरे

साथ भक्ति से रचना (विनयपत्रिका) और रचयिता (गोस्वामी तुलसीदास) का सम्बन्ध शुक्लजी जोडते जाते हैं। वे विषय के फलक को व्यापक करते है और उसके स्वरूप का विश्लेषण करते जाते हैं। निबन्ध का दूसरा अनुच्छेद विषय के फलक को व्यापक करनेवाला है। तीसरे अनुच्छेद मे वे व्यक्ति तुलसी का विवेचन करते है। शुक्लजी अपने सिद्धान्त कथना के साथ उदाहरण तयार रखते है और आवश्यकतानुसार उनका उपयोग करते जाते हैं। उदाहरणो द्वारा जब वे अपनी बात स्पष्ट रूप मे कह देते हैं तो फिर विषय को समेटते हुए कहेंगे— "साराश यह कि भक्ति का मूल तत्त्व है महत्त्व की अनुभूति " बाद मे फिर वे 'महत्त्व की अनुभूति' को समझान लगेंगे। इसके साथ अपने लघुत्व का बोध भी करवायेंगे। तदनुसार उदाहरण देंगे और आगे बढेंगे। सम्बन्ध-भावना के रूप मे भक्ति का विश्लेषण करेंगे और अपना निष्कर्ष लिखेंगे। चिन्तामणि भाग 1—के निबन्ध मे एक अनुच्छेद नया जोडा गया है। वह इस प्रकार है—

> "गोस्वामीजी एक बार वृन्दावन गये थे। वहा किसी कृष्णोपासक ने उन्हें छेडकर कहा—आपके राम तो बारह ही कला के अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण की भक्ति क्यो नही करते जो सोलह कला के अवतार हैं। गोस्वामीजी बडे भोलेपन के साथ बोले—'हमारे राम अवतार भी हैं, यह हमे आज मालूम हुआ।' राम भगवान के अवतार हैं इससे उत्तम फल या उत्तम गति दे सकते हैं, बुद्धि के इस निर्णय पर तुलसी राम से भक्ति करने लगे हो, यह बात नही है। राम तुलसी को अच्छे लगते हैं, उनके प्रेम का यदि कोई कारण है तो यही।"[183]

इस अनुच्छेद के बाद दो उदाहरण बदल दिये हैं और कुछ नई पक्तिया उदाहरणा के अनुकूल लिखी हैं। 'नाहिन नर परत ' का उदाहरण वैसे ही है और इसके बाद अंतिम अनुच्छेद है। यह अनुच्छेद निबन्ध के उपसहार के रूप मे है। इस अनुच्छेद को नीचे उद्धत कर रहा हूँ—

> "प्रभु के सर्वगत होने का ध्यान करते करते भक्त अन्त म जाकर उस अवस्था को प्राप्त करता है। जिसमे वह अपने साथ साथ समस्त ससार को उसे एक अपरिच्छिन्न सत्ता मे लीन होता हुआ देखने लगता है, और दृश्य भेदो का उनके ऊपर उतना जोर नही रह जाता। तक या युक्ति जसी अवस्था की सूचना भर दे सकती है—वाक्य ज्ञान भर करा सकती है। ससार म परोपकार और आत्मत्याग के जो उज्ज्वल दृष्टान्त कही-कही दिखाई पडा करते हैं, वे इसी अनुभूति माग म कुछ न कुछ अग्रसर होने के हैं। यह अनुभूति माग या भक्ति माग बहुत दूर तक लोकल्याण की व्यवस्था करता दिखाइ पडता है,

पर और आगे चलकर यह निस्सग साधक को सब भेदो से परे ले जाता है।"[134]

इस अनुच्छेद के बाद के तीनो ही पृष्ठ चिन्तामणि भाग 1, के निबन्ध मे नही हैं। बात यह है कि सामान्य रूप म शुक्लजी भक्ति-मार्ग के सम्बन्ध मे इस अनुच्छेद तक सब कुछ कह देते हैं। बाद म तो विनयपत्रिका से उदाहरण देना शेष रह गया और विनय पत्रिका के सम्बन्ध में कहते-कहते हरितोषिणी टीका पर कहना रह गया था। तुलसी से विनयपत्रिका पर और विनयपत्रिका से हरितोषिणी टीका पर और टीका से फिर श्रीयुत वियोगी हरि के सम्बन्ध म कहकर शुक्लजी ने अपना परिचय पूर्ण किया। शुक्लजी निबन्ध लिखते समय अपना ध्यान विषय पर केन्द्रित रखते हैं। विषय की लीक से वे हटना नही चाहते। विषय के साथ व्यक्ति आ तो जाता है किन्तु उसे विषय बोध के बाद म ही पहचाना जा सकता है। हरितोषिणी टीका के परिचय मे व्यक्ति आया है किन्तु चिन्तामणि भाग 1, के निबन्ध म व्यक्ति उस रूप मे नही है। न तो रचना (विनयपत्रिका) प्रधान है। और न ही रचना की टीका (हरितोषिणी टीका) प्रधान है। दोनो से तुलसी ही अधिक प्रधान हो गये हैं। परिचय मे वियोगी हरि का नाम बहुत बाद मे आता है। बाद मे क्या—अन्त-अन्त मे है। और यह नाम भी व्यक्ति को विषय से जोड़ते हुए आया है।

शुक्लजी का लेखन प्रतिबद्धता का लेखन है और परिमाण मे फुटकल अधिक है। उनके लेखन को पुस्तकाकार रूप बहुत बाद मे प्राप्त हुआ। पुस्तक की योजना मे रखकर उनका लेखन कम हुआ है। सम्पादन, इतिहास, समीक्षा, अनुवाद, परिचय, भूमिकाओ आदि से सम्बन्धित लेखन प्रतिबद्धता का लेखन ही होता है। इस लेखन के दायित्व का निर्वाह करते हुए उन्होने अपना लेखन कार्य जारी रखा है। किन्तु जो लिख लिया उसको उन्होंने निबन्धो मे परिणत किया है। उनके फुटकल लेखन ने निबन्ध के रूप मे परिपूर्ण रूप प्राप्त किया है। हरितोषिणी टीका का परिचय चिन्तामणि भाग 1, मे निबन्ध का आकार ग्रहण कर गया है।

परिशिष्ट-2
सदर्भ एव टिप्पणी

1 इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल

1 रामचन्द शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी 1, प्रथम सस्करण, सवत 2019, पृ० 157 से 168 तक।

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, नौवा सस्करण, सवत् 2009, वक्तव्य, पृ० 1

3 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, प० 168।

4 इतिहास की नियति—शुक्लजी, श्री गोकुलचन्द्र शुक्ल/शीपक लेख से, *हिन्दुस्तानी, आचाय रामचन्द्र शुक्ल विशेषाक, जुलाई दिसम्बर 1983 ई०* भाग 44, अक 3 4, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहबाद, प० 128।

5 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, पृ० 175।

6 चिन्तामणि भाग 3, रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष माग, नई दिल्ली 110002, उक्त पुस्तक के अन्त मे 'अठाइसवा अखिल भारतीय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, साहित्य परिषद, स्वागताध्यक्ष का भाषण छपा है। उक्त भाषण से, प० 276।

7 इतिहास क्या है ? मूल लेखक ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, दी मैकमिलन कपनी ऑफ इडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1976, प० 78।

8 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, प० 78 और 79।

9 भारत को क्या करना चाहिए ? रामचन्द शुक्ल, आचाय शुक्ल का यह निबध What has India to do शीपक से डॉ०सच्चिदानन्द सिन्हा के सपादकत्व मे इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली अग्रेजी मासिक 'दि हिन्दुस्तान रिव्यू' के फरवरी 1907 ई० के अक मे 'डिस्कशन स्तम्भ के अतगत प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद अपूर्वानन्द ने किया है। यह अनुवाद आलोचना 74, जुलाई

सितम्बर 1985 अक मे प्रकाशित हुआ है। उसी अक से पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। पृ० स० 3।

10 वही, पृ० 4।

11 वही, पृ० 5।

12 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, पृ० 214-215-216।

13 वही, पृ० 315

14 आलोचना 74, जुलाई सितम्बर 1985, वीर भारत तलवार, द्वारा लिखित लेख—'राष्ट्रीय आन्दोलन और रामचन्द्र शुक्ल [असहयोग और व्यापारिक श्रेणियाँ—के विश्लेषण का प्रयास] पृ० 7

15 आचार्य शुक्ल के पुत्र गोकुलचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

"शुक्लजी ने प्राचीन साहित्य से अर्वाचीन साहित्य तक का पूरा आलेख तैयार करके [इतिहास सशोधित करके] प्रेस मे भेज दिया। वह सामग्री प्रेस से किसी तरह लापता हो गई। शुक्लजी दमा के मरीज थे, इसलिए वह लेटे-लेटे तकिया के ऊपर कागज रखकर पेंसिल से लिखा करते थे। टाइप की सुविधा नही थी, इसलिए वही कागज सीधे प्रेस मे चला जाता था। दूसरी कापी न होने से एक बार का लिखा हुआ यदि किसी तरह से गायब हो जाता तो उन्हे दूसरी बार वही लिखना पडता। वह सस्करण सभा से बहुत जल्दी निकलना था, इसलिए शुक्लजी को जब आलेख दूसरी बार तैयार करना पडा, तब उन्होने पुराने कवियो पर थोडा-थोडा लिख डाला किन्तु नए लेखको और कवियो पर सामग्री नही तैयार कर सके। सभा ने इसी तरह के अपने वक्तव्य के साथ वह सस्करण निकाल दिया। अब शुक्लजी दुबारा लिखने लगे। निराला, महादेवी, पत, दिनकर, नवीन, भारतीय आत्मा आदि अपना पूरा साहित्य दे गए थे। नए लेखक अपनी किताबें दे गए थे। शुक्लजी ने सब की विवेचना बनारस और मिर्जापुर मे बैठ कर लिख डाली। यह सब आलेख वे प्रेस म भेजनेवाले थे। तभी उन्हें दो दिन के आवश्यक कार्यवश मिर्जापुर जाना पडा। जल्दी-जल्दी मे सारी सामग्री मेज पर ही छोडकर चले गए। घर मे एक अल्पवयस्क नौकर विन्ध्याचल था। उसने समझा कि यह सब रद्दी पडी है। अखबार बेचते समय उसने वह सब बेच दिया और उस पैसे से मिठाई खा ली। वे अब तीसरी बार अद्यतन विशद विवेचना मे लग गए। दूसरे कई नए कवियो और लेखको ने अपनी किताबें उन्हें समर्पित की। अब तक उनके शिष्यो ने भी कुछ कविताएँ एव कुछ प्रबन्ध लिख लिए थे। शुक्लजी ने मुझसे कहा कि इस बार इन सबको शामिल कर रहा हूँ। नए लोगो को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उन्होंने लगभग डेढ़ सौ पृष्ठ लिख डाले। प्रतिदिन करीब पन्द्रह पृष्ठ लिखते थे। दिसम्बर की छुट्टियाँ थीं।

बनारस आया और वह सारी सामग्री सरसरी निगाह से देखी। शुक्लजी ने कहा कि फरवरी मार्च मे अब महोत्सव संस्करण आ रहा है दो फरवरी को शुक्लजी की हृदयगति रुक गई। हम लोग दाह संस्कार करके घर वापस आए। अब हम लोगो ने उनका सामान सहेजना शुरू किया। आलेखो को ढूढने लगे। पिता के वियोग का जितना दु ख था, उतना ही दुख हमे आलेखो के वियोग का था। हिन्दी साहित्य के इतिहास की वह बहुमूल्य सामग्री ऐसी दु खदायी परिस्थिति मे कौन ले गया, यह आज तक नही मालूम हो पा रहा है। अत मे सभा ने पजाब संस्करण की संक्षिप्त सामग्री ही लेकर वह संस्करण भी प्रकाशित कर दिया। वह इतिहास उसी रूप मे प्रचलित हो गया जिसे शुक्लजी अधूरा कहते थे।"

—हिन्दुस्तानी, जुलाई दिसम्बर 1983 ई० भाग 44, अक 3-4, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद प० 129 130।

2 इतिहास के तथ्य

15 इतिहास क्या है ?, ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, प० 19।

16 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य से (प्रथम संस्करण के)।

17 मिश्रबन्धु और उनका साहित्य, श्रीमती रमादेवी शुक्ल, [मराठवाडा विश्व विद्यालय, औरंगाबाद द्वारा पी एच डी के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध 1984 ई०] प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय म तालिका दी गई है। प० स० 137 से 264, [प्रबन्ध अप्रकाशित है, टंकित प्रति की प० स० दी गई है]

18 वही, अध्याय ततीय, पृ० स० 114 से 120 तक

19 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 29,

20 वही, प्रथम संस्करण का वक्तव्य, प० 2।

21 वही, प्रथम संस्करण का वक्तव्य, पृ० 2।

22 वही, प० स० 8।

23 इतिहास क्या है ? ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, प० 7।

3 काल विभाजन

24 साहित्य सिद्धान्त, रेनेवेलेक आस्टिन वारेन, अनुवादक श्री बी एस पालीवाल, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाधी मार्ग, इलाहाबाद 1 प्रथम संस्करण, पृ० 344।

25 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य, पृ० 21
26 वही, वक्तव्य, प० 2 और 3।
27 वही, पृ० 5
28 आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल नामकरण किया। डॉ० रसाल न बाल्यकाल कहा, राहुल जी ने सिद्ध-सामतकाल कहा, डॉ० रामकुमार वर्मा ने चारणकाल कहा, इस सबका विस्तृत विवेचन डॉ० विजय शुक्ल ने किया है।
--साहित्येतिहास सिद्धान्त एव स्वरूप, डा० विजय शुक्ल, प्रथम सस्करण, 1978, प० 60 61 तथा 62
29 रीतिकाल के अनेक नाम नामकरण हैं—मनोरजनकाल, अलकारकाल, शृगारकाल, कलाकाल, आदि। इस सम्बन्ध मे डा० विजय शुक्ल की पुस्तक देखिए। पृ० 67 68।
30 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, 6 (वक्तव्य)
31 वही, पृ० 6 और 7 (वक्तव्य)

4 वीरगाथा काल परम्परा और परम्परा

32 दूसरी परम्परा की खोज, डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष रोड, नयी दिल्ली-110002, प्रथम सस्करण 1982, पृ० 18 और 19।
33 वही, प०19
34 वही, प० 19
35 हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी, सस्करण 1979 ई०, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष माग, नयी दिल्ली-110002,—पृ० 13
36 वही, प० 37।
37 वही, पृ० 37 और 38।
38 आचाय रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली-110002, प्रथम सस्करण 1973 ई०, पृ०184 से 207
39 वही, प० 186 और 187
40 हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी, प० 35।
41 दूसरी परम्परा की खोज, डॉ० नामवरसिंह, पृ० 19 और 20।
42 वही, पृ० 20 ।

बनारस आया और वह सारी सामग्री सरसरी निगाह से देखी। शुक्लजी ने कहा कि फरवरी मार्च मे अब महोत्सव सस्करण आ रहा है दो फरवरी को शुक्लजी की हृदयगति रुक गई। हम लोग दाह सस्कार करके घर वापस आए। अब हम लोगो ने उनका सामान सहेजना शुरू किया। आलेखो को ढूढने लगे। पिता के वियोग का जितना दु ख था, उतना ही दुख हमे आलेखो के वियोग का था। हिन्दी साहित्य के इतिहास की वह बहुमूल्य सामग्री ऐसी दु खदायी परिस्थिति मे कौन ले गया, यह आज तक नही मालूम हो पा रहा है। अत मे सभा ने पजाब सस्करण की सक्षिप्त सामग्री ही लेकर वह सस्करण भी प्रकाशित कर दिया। वह इतिहास उसी रूप मे प्रचलित हो गया जिसे शुक्लजी अधूरा कहते थे।"

—हिन्दुस्तानी, जुलाई-दिसम्बर 1983 ई० भाग 44, अक 3 4, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद पृ० 129-130।

2 इतिहास के तथ्य

15 इतिहास क्या है ?, ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, प० 19।

16 *हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,* वक्तव्य से (प्रथम सस्करण के)।

17 मिश्रबन्धु और उनका साहित्य, श्रीमती रगादेवी शुक्ल, [मराठवाडा विश्व विद्यालय, औरगाबाद द्वारा पी एच डी के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध 1984 ई०] प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय मे तालिका दी गई है। प० स० 137 से 264, [प्रबन्ध अप्रकाशित है, टकित प्रति की पृ० स० दी गई है]

18 वही, अध्याय तृतीय, पृ० स० 114 से 120 तक

19 *हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,* पृ० 29,

20 वही, प्रथम सस्करण का वक्तव्य, प० 2।

21 वही, प्रथम सस्करण का वक्तव्य, प० 2।

22 वही, पृ० स० 8।

23 इतिहास क्या है ? ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, प० 7।

3 काल विभाजन

24 साहित्य सिद्धान्त, रेनेवेलेक आस्टिन वारेन, अनुवादक श्री बी एम पालीवाल लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाधी मार्ग, इलाहाबाद 1 प्रथम सस्करण, पृ० 344।

25 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य, प॰ 21
26 वही, वक्तव्य, पृ॰ 2 और 3।
27 वही, प॰ 5
28 आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल नामकरण किया। डॉ॰ रसाल ने बाल्यकाल कहा, राहुल जी ने सिद्ध-सामतकाल कहा, डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने चारणकाल कहा, इस सबका विस्तृत विवेचन डॉ॰ विजय शुक्ल ने किया है।
—साहित्येतिहास सिद्धान्त एव स्वरूप, डा॰ विजय शुक्ल, प्रथम सस्करण, 1978, पृ॰ 60 61 तथा 62
29 रीतिकाल के अनेक नाम नामकरण हैं—मनोरजनकाल, अलकारकाल, शृगारकाल, कलाकाल, आदि। इस सम्बन्ध मे डा॰ विजय शुक्ल की पुस्तक देखिए। प॰ 67 68।
30 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, 6 (वक्तव्य)
31 वही, प॰ 6 और 7 (वक्तव्य)

4 वीरगाथा काल परम्परा और परम्परा

32 दूसरी परम्परा की खोज, डा॰ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाप रोड, नयी दिल्ली-110002, प्रथम सस्करण 1982, पृ॰ 18 और 19।
33 वही, प॰19
34 वही, पृ॰ 19
35 हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी, सस्करण 1979 ई॰, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाप माग, नयी दिल्ली 110002,—पृ॰ 13
36 वही, पृ॰ 37।
37 वही, पृ॰ 37 और 38।
38 आचाय रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली 110002, प्रथम सस्करण 1973 ई॰, प॰184 से 207
39 वही प॰ 186 और 187
40 हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी प॰ 35।
41 दूसरी परम्परा की खोज, डॉ॰ नामवरसिंह, पृ॰ 19 और 20।
42 वही, पृ॰ 20 ।

43 आचाय रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, डॉ० रामविलास शर्मा, प० 45।
44 वही, पृ० 50 से 66।
45 हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी, प॰ 36 और 37।

5 भक्तिकाल साहित्यिक अभिरुचि और समीक्षा

46 गोस्वामी तुलसीदास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, अष्टम सस्करण, सवत्2019, सशोधित सस्करण के वक्तव्य से।
47 हिन्दी अनुसन्धान का स्वरूप, स०भ०ह० राजूरकर, राजमल बोरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली 110002, प्रथम सस्करण 1978 ई०, डॉ० नगेन्द्र के निबन्ध 'अनुसधान और आलोचना' से प० 112।
48 जायसी ग्रथावली, सम्पादक आचाय रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, चतुथ सस्करण, सवत 2007, वक्तव्य, प० 1 से।
49 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, प० 216
50 भ्रमरगीतसार, सम्पादक आचाय रामचन्द्र शुक्ल, उपसम्पादक आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, अष्टम सस्करण, सवत 2014, रामदास पोद्दार एण्ड सन्ज, साहित्य सदन बनारस, वक्तव्य से।
51 वही, भूमिका, पृ० 56।
52 साहित्य सिद्धान्त, रेनेवेलेक, आस्टिन वारेन, अनुवादक बी०एस० पालीवाल, पृ० 335।
53 डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी का आलेख 'हिन्दी समीक्षा का सत्व और आचाय रामचन्द्र शुक्ल (हैदराबाद विश्वविद्यालय हैदराबाद म 31 अक्तूबर 1985 को पठित)-पृ० 2।
54 वही, आलेख की अन्तिम पक्तिया

6 भक्ति आन्दोलन का सौंदयशास्त्र

55 चिन्तामणि भाग 1, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, 1962 ई० मे प्रकाशित सस्करण, इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमिटड, प्रयाग, प० 27
56 वही, प० 31।
57 वही, प० 42 43।
58 सूरदास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पचम सस्करण, सन 1961 ई०, सरस्वती मदिर, जतनबर, वाराणसी, प० 72-73

59 वही, प० 76 ।

60 वही, पृ० 77 ।

61 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, प्रथम सस्करण, सवत 2019, चन्द्रभूषण मिश्र, वाणीवितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी-पृ० 265

62 वही, पृ० 267-268

63 वही, पृ० 265

64 रस मीमासा, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, द्वितीय सस्करण, सवत 2011, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० 189 ।

7 क्षितिज और अन्तराल के कवि

65 इतिहास क्या है ? ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर प० 3

66 हिन्दी साहित्य का उदभवकाल, डॉ० वासुदेवसिंह, हिन्दी प्रचारक सस्थान वाराणसी, प्रथम सस्करण, 1973 ई० पृ० 231 से 245 ।

67 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 57

68 खालिक बारी (अमीर खुसरो कृत), सम्पादक डॉ० श्रीराम शर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथम सस्करण सवत् 2021, भूमिका, पृ० 5 ।

69 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 92

70 वही, प० 92

71 दूसरी परम्परा की खोज, डॉ० नामवर सिंह, अस्वीकार का साहस, पृ० 43 से 56 ।

72 चिन्तामणि भाग 2, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, सम्पादक, आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चतुथ आवृति, सवत् 2014, सरस्वती मन्दिर, जतनपर, वाराणसी, पृ० 22 ।

73 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 231 ।

74 इतिहास एक प्रवचना, ई० एच० डान्स, अनुवादक बलभद्रप्रसाद मिश्र, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, प्रथम सस्करण 1967 ई० पृ० 91 ।

75 वही, पृ० 91 ।

76 वही, प० 91 ।

77 इतिहास क्या है ? ई० एच० कार, अनुवादक अशोक चक्रधर पृ० 10 ।

78 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 59 ।

8 रीतिकाल : ऐतिहासिक अवधारणा

79 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 5 और 6 [वक्तव्य से]
80 वही, पृ० 208।
81 वही, पृ० 234।
82 वही, पृ० 250 251।
83 हिन्दी साहित्य का अतीत, दूसरा भाग, आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, द्वितीय सस्करण सवत् 2029, पृ० 388।
84 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम सस्करण, सवत 2015, पृ० 163-164।
85 वही, पृ० 164।
86 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, वक्तव्य, प० 6।
87 वही, प० 237।
88 वही, पृ० 237।
89 रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ० महेन्द्रप्रताप सिंह, प्रथम सस्करण 1977 ई०, पटल प्रकाशन, के-46, कैलास कालोनी, नई दिल्ली 110048, पृ० 215।
90 वही, पृ० 215-216।
91 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल पृ० 237।
92 वही, प० 237।
93 वही, वक्तव्य पृ० 6।
94 हिन्दी साहित्य का अतीत, दूसरा भाग, शृगार काल, आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प० 611 और 612।
95 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 322।
96 वही, प० 322 323।
97 वही, पृ० 323।
98 वही, प० 324।
99 वही, पृ० 324।
100 वही, पृ० 324।
101 वही, पृ० 324।
102 वही, पृ० 322।
103 वही, पृ० 192।

104 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र, पृ० 546।

105 वही, प० 548।

106 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, प० 324।

107 वही, पृ० 324।

9 रीतिकाल और आधुनिक काल

108 "सवत 1900 अर्थात 1844 ई०के आसपास रीतिकालीन काव्यधारा अत्यन्त लोकप्रिय होने के साथ समस्त उत्तर भारत की भाषाओ के बीच सम्पक स्थापित करनेवाली साहित्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित रही है। अत इसीके आसपास रीतिकाल की समाप्ति घोषित कर देने से इतिहास पुरुष को जीवित रूप म ही जल समाधि दे दी गई है।"—रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ० महेन्द्र प्रताप सिंह, पृ० 212।

109 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 238-239।

110 हिन्दी वीरकाव्य [1600-1800 ई०] सर्वेक्षण, वर्गीकरण तथा मूल्याकन, राजमल बोरा, नमिता प्रकाशन, 5, मनीषा नगर, केसरसिंह पुरु, औरगाबाद 431005, प्रथम सस्करण, 1979 ई,० पृ० स० 229 से 233 तक।

111 शाहजहानामा, [मुशी देवीप्रसाद कृत), सपादक डॉ० रघुबीरसिंह और डॉ० मनोहर सिंह राणावत, मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सस्करण 1975 ई० पृ० 320।

112 वही, पृ० 138।

113 डॉ० मनमोहन सहगल, पटियाला से टकित आलेख (3 अप्रल, 1986 को) प्राप्त हुआ। आलेख का शीपक 'पजाब मे रचित हिन्दी रीतिकाव्य' है। डॉ० सहगल 'राष्ट्रीय व्याख्यानमाला योजना के अन्तगत' मराठवाडा विश्वविद्यालय आये थे। विभाग मे उन्होने इस विषय पर व्याख्यान भी दिया था। रीतिकालीन (पजाब मे उपलब्ध) सामग्री को नये सिरे से प्रस्तुत करने की उनकी योजना है।

114 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 422 तथा 423।

115 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, प० 48।

116 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी 1958 ई० मे प्रकाशित सस्करण, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृ० 55।

10 आधुनिक काल गद्य पद्य उत्थान

117 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 479।
118 वही, पृ० 469।
119 वही, पृ० 467।
120 वही, पृ० 487।
121 वही, पृ० 577।
122 वही, पृ० 589।
123 वही, पृ० 604।
124 वही, पृ० 622।
125 वही, पृ० 533।
126 वही, पृ० 538।
127 रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रशेखर शुक्ल, पृ० 321।
128 हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 564।

परिशिष्ट 1 वियोगीहरि कृत हरितोषिणी टीका का परिचय

129 विनय पत्रिका (हरितोषिणी टीका), वियोगीहरि, सप्तम सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण सवत् 2013, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी, पृ० 10।
130 (अ) चिन्तामणि भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 203।
(आ) विनयपत्रिका, हरितोषिणी टीका, प० वियोगीहरि, पृ० 1।
131 चिन्तामणि भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 203।
132 विनयपत्रिका, हरितोषिणी टीका, प० वियोगीहरि, पृ० 5।
133 चिन्तामणि भाग 1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 205।
134 (अ) वही, पृ० 206।
(आ) विनयपत्रिका, हरितोषिणी टीका, प० वियोगीहरि, पृ० 7।

□□□



जन्म 5 फरवरी 1933

जन्म स्थान अम्बाजोगाई (महाराष्ट्र)

शिक्षा एम ए [उस्मानिया विश्वविद्यालय 1958]
पी एच डी [श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय 1965 ई]
डी लिट [भागलपुर विश्वविद्यालय 1978 ई]

सम्प्रति रीडर एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग, मराठवाडा विश्वविद्यालय औरगाबाद (महाराष्ट्र)

प्रकाशित पुस्तकें

साहित्य एक विवेचन भूषण और उनका साहित्य चिन्तामणि भाग 1 मीमासा, हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण, आधुनिकता और राष्ट्रीयता पृथ्वीराज रासो इतिहास और काव्य सवेदना के स्तर सवेदना और सौन्दय भाषा अथ और सवेदना हिन्दी वीरकाव्य (1600–1800 ई), राजस्थान के गौरव ग्रन्थ, जुझौत बुन्देला की शौय गाथाएँ भाव—उद्वेग और सवेदना अर्थानुशासन।

सहयोगी लेखन

मराठी भाषा और साहित्य हिन्दी अनुसधान का स्वरूप, हिन्दी अनुसधान के आयाम वेंकटेश्वर से विश्वनाथ (डॉ विजयपालसिंह अभिनन्दन ग्रथ)